





॥ श्रीः ॥

भाषाटीकासहिता ।

॥ घेरण्डसंहिता ॥

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " प्रेस,

कल्याण-बंबई.







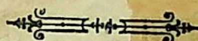
॥ श्रीः ॥

ऋषिवरघेरण्डयोगीश्वरविरचिता

घेरण्डसंहिता ।



(योगशास्त्रम्)



श्रीमथुरास्थदक्षगोत्रोद्भवचातुर्वेदिशर्मश्री ९ पण्डित कल्याणचन्द्रात्मजराधाचन्द्रभिषग्विरचित-व्रजभाषाभाष्यनामकव्रजभाषानुवाद-विभूषिता ।

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

मालिक--" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम् प्रेस,

कल्याण-बंबई.

संवत् १९८६, शके १८५१.

मुद्रक और प्रकाशक-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास

मालिक-"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बंबई.

॥ श्रीः ॥

प्रस्तावना ।



एक चंडकापालि नामक भूपतिने जगत्के हितार्थ एक समय सर्व ऋषिशिरोमणि योगेश्वर श्रीमहाराज घेरण्डजीकी कुटीमें जाकर कहा कि, हे प्रभो ! आप कृपाकरके मुझको योगशास्त्रका उपदेश करो॰ यह राजाके वचन सुनकर हर्षपूर्वक कृपानिधि बोले कि, हे राजन् ! मैं तोको महागुप्त जो योग है ताकों सर्व विधिसहित कहो हों तामें सप्त उपदेश हैं तामें सर्व योगवर्णन कियो और बहुत ललित मनोहर श्लोकोंमें कह्यो यह ग्रंथ आजतक प्रसिद्ध नहीं है और व्याकरणरहितोंको तौ महादुर्लभ है परंतु यह ग्रंथ मुक्तरूप तथा आकाशादि गमन स्वदेहसौं देवेवारो है यह देखकर श्रीमथुराजी निवासी चारों संप्रदायि वामन राजादिके गुरु बडे चौबे श्री १०८ पंडितवर्य कल्याणचंद्रात्मज राधाचंद्र भिषग्वरने व्रजभाषाभाष्य नामक व्रजभाषाटीका कर मोको दीनी मैंने सर्वोप योगी तथा योगाभिलाषियोंके हितार्थ अपने निज लक्ष्मीवेंकटेश्वर छापेखानेमें बहुत सचिक्कण ग्लेज कागजपर टाइपसे छाप प्रकाशित कर आपके दृष्टिगोचर किया है॰

अब सर्व विद्वद्वरोंसे मेरी प्रार्थना है कि इसे मंगाकर योगाभ्याससे अपना मनमलीन निकाल अपना २ जन्म सफल करलें॰

आपका कृपाभिलाषी–

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

" लक्ष्मीवेंकटेश्वर,, छापखाना,

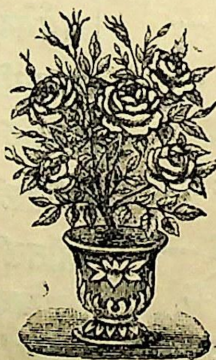
कल्याण–बंबई.



॥ श्रीः ॥

विषयानुक्रमणिका ।

इति विषयानुक्रमणिका ।



ॐ हरिं वंदे ।

घेरण्डसंहिता ।

(योगशास्त्रम्)

भाषानुवादसहिता ।

एकदा चण्डकापालिर्गत्वा घेरण्डकुट्टिमम् ।
प्रणम्य विनयात् भक्त्या घेरण्डं परिपृच्छति ॥ १ ॥

नत्वा कुंजविहारिणं व्रजवधूवक्त्रांबुजस्वादकं
श्रीनारायणपादपद्मयुगलं वन्दे द्विरेफो ह्यहम् ।
घेरण्डेन कृता च योगसुलभा ज्ञानप्रदा भाष्यते
टीका तद्व्रजभाषया सुकविना श्रीराधिकाब्जेन या ॥

अर्थ—एक समय चण्डकापालि (नामक कोई एक योगाभिलाषी) घेरण्ड (नामक एक बडे योगीश्वर) की कुटी (स्थान) को गयौ और विनयपूर्वक भक्तिसहित प्रणाम (नमस्कार) करके घेरण्ड (ऋषि) से पूँछने लग्यौ ॥ १ ॥

घटस्थयोगं योगेश तत्त्वज्ञानस्य कारणम् ।
इदनीं श्रोतुमिच्छामि योगीश्वर वद प्रभो ॥ २ ॥

हे योगेश (योगियोंके मालिक) ! तत्त्वज्ञानका कारण घटस्थ (शरीरस्थ) योग है सो या समय मेरी इच्छा वाके सुनवेको हुई है हे योगेश्वर ! हे प्रभो ! आप कृपा करके उसे मोसों कहौ ॥ २ ॥

घेरण्ड उवाच ॥

साधु साधु महाबाहो यस्मात्त्वं परिपृच्छसि ।
कथयामि हि ते वत्स सावधानाऽवधारय ॥ ३ ॥

घेरण्ड ऋषि बोले कि, हे महाबाहो (अर्थात् बाहुबल-शालिन् क्षत्रियवंशभूषण) ! जो तुमने मोसों पूछौ तासों मैं तुमको साधुवाद (अर्थात् धन्यवाद) देता हूँ हे वत्स (बालक) ! मैं तोसों कहों हौं ताहि त सावधान होके सुन और धारण कर ॥ ३ ॥

नास्ति मायासमं पापं नास्ति योगात्परं बलम् ।
नास्ति ज्ञानात्परो बन्धुर्नाहङ्कारात्परो रिपुः ॥४॥

माया (झूठ) के समान कोई पाप नहीं है और योगके परे कोई बल नहीं है और ज्ञानसों परे कोई बंधु (भाई) नहीं है और अहंकारके समान कोई वैरी है नहीं ॥ ४ ॥

अभ्यासात्कादिवर्णानि यथाशास्त्राणि बोधयेत् ।
तथा योगं समासाद्य तत्त्वज्ञानं च लभ्यते ॥ ५ ॥

जैसे अभ्यास करते करते ककारादि वर्ण (अक्षर) जान पडे हैं और उनके परिचयके पीछे बहुत भाँतिके शास्त्रोंमें बोध हो जाता है याही प्रकार योगके अभ्यास करत करते तत्त्व-ज्ञान प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥

सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्यैर्जायते प्राणिनां घटः ।
घटादुत्पद्यते कर्म घटीयंत्रं यथा भ्रमेत् ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वाधो भ्रमते यद्वत् घटीयंत्रं गवां वशात् ।
तद्वत् कर्मवशाज्जीवो भ्रमते जन्ममृत्युभिः ॥ ७ ॥

भले और बुरे काम करवेसों प्राणियोंका अंग उत्पन्न होता है और वा शरीरसे फिर काम (कर्म) उत्पन्न होता है जैसे कि घटीयंत्र उलट पलट कभी नीचे कभी ऊँचेकी ओर कलोंके वश हो घूमता है इसी भाँति उत्तम मध्यम अधम कर्मोंके वश हो वह जीवभी जन्म और मृत्युके फेरमें पडा घूमता है तो फिर किस उपायसे वह मिट सकता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

इसपर दृष्टान्त देते हैं—

आमं कुम्भमिवाम्भस्थो जीर्यमाणः सदा घटः ।
योगानलेन संदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥ ८ ॥

यह अंग ऐसा गलायमान है जैसे कच्चे घडेमें जल भरवेसों वह घडा गल जाता है परन्तु जब वाको अग्निमें पकाय लेते हैं तब वह घडा कभी नहीं गलता इसी भाँति या शरीरको योग-रूपी अग्निसे अच्छीभाँति पकायके पक्की करनी चाहिये ॥ ८ ॥

सप्तसाधनम् ।

शोधनं दृढता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम् ।
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च घटस्यसप्तसाधनम् ॥ ९ ॥

घेरण्ड ऋषि कहते हैं कि, योगाभ्यास करनेवालेको शरीरके सात साधन हैं । जैसे (शोधन १) देहको शुद्ध करना (दृढता २) मजबूती, (स्थैर्य ३) एकसमान सदा देहका स्थिर रहना, (धैर्य ४) कभी घबडाना नहीं; (लाघव ५) हलकापन, (प्रत्यक्ष ६) आँख आदि इन्द्रियोंसे देखना छूना आदि, (निर्लिप्त ७) सब चीजका व्यौहार वर्त्तना परन्तु सबसे अलग रहना ॥ ९ ॥

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद्दृढम् ।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता ॥ १० ॥
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि ।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः ॥ ११ ॥

शोधन छः कर्मोंसे होता है । आसनोंसे दृढता होती है । मुद्राओंसे स्थिरता होती है । प्रत्याहारसे धैर्य होता है । प्राणायामसे लाघवता (हलकापन) होता है । ध्यानसे अपने आत्मामें जो चाहे प्रत्यक्ष हो जाता है । इसी प्रकार साधनोंसे अन्तमें अवश्य मुक्ति हो जाती है इसमें कुछ संशय नहीं है ॥ १० ॥ ११ ॥

अब उन सातों साधनोंमें प्रथम शोधन जो छः कर्मोंसे होता है उन षट्कर्मोंको कहते हैं-

षट्कर्माणि ।

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिर्लौलिकी त्राटकं तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥ १२॥

इन छः कर्मोंसे शोधन होता है वे ये हैं (धौती १) (बस्ति २) (नेति ३) (लौलिकी ४) (त्राटक ५) (कपालभाति ६) ॥ १२ ॥

धौतिः ।

अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम् ।
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम् ॥ १३॥

धौति चार प्रकारकी है एक तो अन्तर्धौति अर्थात् (अंगके भीतर झाक करना) दूसरी दन्तधौति (दांतोंको)

स्वच्छ करना) तीसरी हृद्धौति (हृदयको निर्मल करना) चौथे मूल शोधन अर्थात् (नाभिको झक करना) या प्रकारकी धौतिसों अंगको निर्मल (मलरहित) करना चाहिये॥ १३॥

अन्तर्धौतिः ।

वातसारं वारिसारं वह्निसारं बहिष्कृतम् ।
घटस्य निर्मलार्थाय अन्तर्धौतिश्चतुर्विधा ॥ १४ ॥

अन्तर्धौतिभी चार प्रकारकी हैं एक तो वातसार (वायुकों त्यागनों) दूसरे वारिसार (जलको त्यागनों) तीसरे वह्निसार (अग्निसार आगे कहेंगे) चौथे बहिष्कृत (यहभी) आगे कहेंगे) यह जो घट (अंगके निर्मल अर्थात् शुद्धि करनेकी) चार प्रकारकी अन्तर्धौति हैं तिनमें पहले वातसार कहे हैं ॥ १४ ॥

वातसारः ।

काकचञ्चुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः ।
चालयेदुदरं पश्चाद्वर्त्मना रेचयेच्छनैः ॥ १५ ॥

अपने मुखकों कऊआकी चोंचके आकार (समान) करके अर्थात् दोनों ओठोंको सिकोडके धीरें धीरें वायुको पीकर पेटमें वाकों चलाय अर्थात् (फिराकर) फिर धीरें धीरें वाको मुखसों निकारे याकों वातसार कहें हैं ॥ १५ ॥

वातसारफलम् ।

वातसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारणम् ।
सर्वरोगक्षयकरं देहानलविवर्द्धनम् ॥ १६ ॥

अब वातसारको फल कहें हैं—वातसार यह परम (बहुत) गोप्य (गुप्त) है और देह निर्मल (शुद्धि) करवेवारो हैं और सबरे रोगनकों क्षय (नाश) करे है और देहकी अग्निकों बढायवेवारो है ॥ १६ ॥

वारिसारः ।

आकण्ठं पूरयेद्वारि वक्त्रेण च पिबेच्छनैः ।
चालयेदुदरेणैव चोदराद्रेचयेदधः ॥ १७ ॥

मुखसों धीरें धीरें कंठतक पानी पीकर फिर वाकों पेटमें फिरावें और वाकों गुदा (गाँड) सो निकार देवे याकों वारिसार कहें हैं ॥ १७ ॥

वारिसारफलम् ।

वारिसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारकम् ।
साधयेत्तं प्रयत्नेन देवदेहं प्रपद्यते ॥ १८ ॥

वारिसारभी बहुत गुप्त है और यह देहकों निर्मल (शुद्ध) करवेवारो है याकों बडे यत्नसों साधन करवेसों देवदेह प्राप्त होय है ॥ १८ ॥

नाभिग्रन्थिं मेरुपृष्ठे शतवारं च कारयेत् ।
अग्निसारमियं धौतिर्योगिनां योगसिद्धिदा ॥ १९ ॥
उदरामयजं त्यक्त्वा जठराग्निं विवर्द्धयेत् ।
एषा धौतिः परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा ।
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहं भवेद्ध्रुवम् ॥ २० ॥

टूँडीकी गाँठको सौवार मेरुपृष्ठमें लगावे अर्थात् (पेटकों ऐसा फुलावे खलावे) कि नाभि घुसाकर पीठकी हड्डीमें

लगानो यह अग्निसार धौति कही जाय है जो योगियोंकों सिद्धिकी देवेवारी है ॥ १९ ॥ और यह पेटके रोगनकों दूर करे और जठराग्निकों बढावे है और यह धौति बहुत गुप्त है अर्थात् (बहुत कठिन है) और देवताकोंभी दुर्लभ है अर्थात् (देवतानकोंभी नहीं मिले) और केवल याही धौतिके साधनमात्रसों देवदेह हो जाय है ॥ २० ॥

बहिष्कृतधौतिः।

काकीमुद्रां शोधयित्वा पूरयेदुदरं महत् ॥ २१ ॥
धारयेदर्द्धयामंतु चालयेदधोवर्त्मना।
एषा धौतिःपरा गोप्या न प्रकाश्या कदाचन॥२२॥

पहिले कौवाकी चोंचके समान मुख करके ऐसी वायु पान करे, जासो पेट भरजाइ ॥ २१ ॥ फिर वा पवनके डेढ घंटा पेटमें राखि पाछें गुदा (गांड) के द्वारा बाहर निकारे यहभी धौति बहुत कठिन है याकों काऊकों जाहिर न करनी॥ २२॥

प्रक्षालनम्।

नाभिमग्नो जले स्थित्वा शक्तिनाडीं विसर्जयेत्।
कराभ्यां क्षालयेन्नाडीं यावन्मलविसर्जनम् ॥ २३ ॥
तावत्प्रक्षाल्य नाडीं च उदरे वेशयेत्पुनः।
इदं प्रक्षालनं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम्।
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहो भवेद्ध्रुवम् ॥ २४ ॥

नाभि (टूँडी) डूब जाय ऐसे गहरे जलमें ठाडो हेकें शक्तिनाडी (त्रिवली) कों बाहर करकें जबतक मल दूर

होई तबतक बहुत धोवैं शुचि भये पीछें फिर पेटके भीतर बैठार दे या प्रक्षालनकी विधि बडी कठिन है और देवतानकोभी दुर्लभ है और याके बल धौति मात्रसेही निश्चय देवदेह होजाइ है ॥ २३ ॥ २४ ॥

बहिष्कृतधौतिप्रयोगः ।

यामार्द्धं धारणं शक्तिं यावन्न धारयेन्नरः ।
बहिष्कृतमहद्धौतिस्तावच्चैव न जायते ॥ २५ ॥

जबतक साधक आधे पहरतक स्वास न रोक सकै तबतक यह महाधौतिको धारण न करै । क्योंकि उस शक्तिके विना अधम होनेका भय रहता है ॥ २५ ॥

दन्तधौतिः ।

दन्तमूलं जिह्वामूलं रन्ध्रं च कर्णयुग्मयोः ।
कपालरन्ध्रं पञ्चैते दन्तधौतिं विधीयते ॥ २६ ॥

दन्तधौति पांच तरहकी हैं जैसे(दातोंकी जडको धोना १) (जीभकी जडको धोना २)(कानके दोनों छेदोंको धोना ३-४) (तथा कपालके छेदको धोना ॥ ५) ॥ २६ ॥

दन्तमूलधौतिः ।

खादिरेण रसेनाथ मृत्तिकया च शुष्कया ।
मार्जयेद्दन्तमूलं च यावत्किल्बिषमाहरेत् ॥ २७ ॥

खैर रससों अथवा विशुद्ध सूखी माटीसों दाँतोंकी जडको झक करे और जबतक मैल न दूर होइ तबतक कुल्ला कर कर फिर फिर झक करै ॥ २७ ॥

दन्तमलधौतिफलम् ।

दन्तमूलं परा धौतिर्योगिनां योगसाधने ।
नित्यं कुर्यात्प्रभाते च दन्तरक्षाय योगवित् ।
दन्तमूलं धारणादिकार्येषु योगिनां मतम् ॥ २८ ॥

योगियोंके योगसे साधनमें दन्तमूल धौति (अर्थात् दाँतका धोना) सबसे उत्तम काम है। यासों योगके जाननेवाले नर नित्यप्रति प्रातः समय दाँतोंकी रक्षाके लिये इस दातौन आदि विधिको करना योगियोंका मुख्य काम है ॥ २८ ॥

जिह्वाशोधनम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि जिह्वाशोधनकारणम् ।
जरामरणरोगादीन् नाशयेद्दीर्घलम्बिका ॥ २९ ॥

दन्तशोधनके पीछे जिह्वा (जीभ) शोधन कहे हैं। जिह्वाके शोधनसों जीभ लम्बी होइ है और तासों जरा (बुढापा) अर्थात् मौत तथा और सब रोग दूर हो जाइ हैं॥ २९ ॥

जिह्वामूलधौतिः ।

तर्जनी मध्यमाऽनामा अङ्गुलित्रययोगतः ।
वेशयेद्गलमध्ये तु मार्जयेल्लम्बिकाजडम् ॥
शनैः शनैर्मार्जयित्वा कफदोषं निवारयेत् ॥ ३० ॥

(तर्जनी) अंगुठाके पासकी अंगुली मध्यमा (बीचकी अंगुली) अनामिका (छोटी अंगुलीके पासकी) ये तीन अंगुलियोंको गलेके भीतर धसेरके जीभकी जड (मूल) तब

बार बार घिसे और धीरें धीरें जो कुछ कफका दोष होय उसको निकाल गेरे और यह कफके दोषको दूर करैं हैं ॥ ३० ॥

मार्जयेन्नवनीतेन दोहयेच्च पुनः पुनः ।
तदग्रं लोहयंत्रेण कर्षयित्वा शनैः शनैः ॥ ३१ ॥

फिर माखनको जीभमें लगाकर रोजही रोज बार बार दुहे और पीछे लोहेके चीमटासों उस जीभका अग्रभाग पकडकें धीरें धीरें रोज खेंचो करै ॥ ३१ ॥

नित्यं कुर्यात्प्रयत्नेन रवेरुदयकेऽस्तके ।
एवं कृते च नित्ये च लम्बिका दीर्घतां व्रजेत् ॥ ३२ ॥

प्रतिदिन सूर्यके उदय और अस्तसमयमें यह धाति ताको अभ्यास करै यदि इसी प्रकार नित्तही नित्त यह विधि करी जाय तो जीभ लम्बी हो जायगी ॥ ३२ ॥

कर्णधौतिः ।

तर्जन्यनामिकायोगान्मार्जयेत्कर्णरन्ध्रयोः ।
नित्यमभ्यासयोगेन नादान्तरं प्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥

तर्जनी (अंगूठाके पासकी अंगुली) और अनामिका (छोटी अँगुलीके पासकी अंगुली) के योगसों कानोंके दोनों छेदोंको प्रतिदिन शुद्ध करै तो एक भाँतिका विशुद्ध नाद प्रगट हुवा करता है ॥ ३३ ॥

कपालरंध्रशोधनम् ।

बद्धाङ्गुष्ठेन दक्षेण मार्जयेद्भालरन्ध्रकम् ।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ॥ ३४ ॥

नाडी निर्मलतां याति दिव्यदृष्टिः प्रजायते।
निद्रान्ते भोजनान्ते च दिवान्ते च दिने दिने॥३५॥

दहने हाथके अँगूठेके द्वारा प्रतिदिन सोयके उठै तब और भोजनके अंतमें और सूर्यास्तके समयमें कपालरंध्र अर्थात् शिरके बीचमें जो गढेला है उसे जलहीसों साफ करै और या प्रकारके अभ्याससों भीतरी कफताके दोष नाश हो जाय हैं। और नाडियाँ निर्मल हो जाती हैं और दृष्टि (निगह) दिव्य (साफ) हो जाती है॥ ३४॥ ३५॥

हृद्धौतिं त्रिविधं कुर्याद्दण्डवमनवाससा॥ ३६॥

हृद्धौति अर्थात् हृदयको झक्का करनेकी विधि तीन तरहकी है (दंडधौति १) (वमनधौति २) (वासधौति ३)॥ ३६॥

रम्भादण्डं हरिद्राया वेत्रदण्डं तथैव च।
हृन्मध्ये चालयित्वा तु पुनः प्रत्याहरेच्छनैः॥३७॥

केलाके बीचको जो (सारभाग वाको दंडा) वा हरदीको दंडा अथवा चीकने वेतको दंडा बनायके हृदयके बीच धीरें धीरें प्रवेश करके फिर धीरें धीरें बाहर निकारे याको हृद्धौति कहते हैं॥ ३७॥

दण्डधौतिः।

कफपित्तं तथा क्लेदं रेचयेदूर्ध्ववर्त्मना।
दण्डधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद्ध्रुवम्॥३८॥

इस दंडधौतिके करवेसों कफ और पित्त तथा क्लेद (उकलाहट) आदि विकारी मल मुखके द्वारा हृदयसों निकाल

बाहर होते हैं जासों हृदयके समस्त रोग निश्चय नाश होय जाय हैं ॥ ३८ ॥

वमनधौतिः ।

भोजनान्ते पिबेद्वारि चाकण्ठं पूर्णितं सुधीः ॥ ३९ ॥
ऊर्ध्वदृष्टिं क्षणं कृत्वा तज्जलं वमयेत्पुनः ।
नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तं निवारयेत् ॥ ४० ॥

बुद्धिवान् पुरुष भोजनके अंतमें कंठतक जल पीलेवे फिर थोडी देरतक ऊपरकी और देखते रहै फिर थोडी देरसें वा जलकों वमन करदेवे इसीको वमनधौति कहते हैं । इस वमन धौतिका जो प्रतिदिन अभ्यास करवेसों कफ और पित्तके (दोषोंको) दूर करे है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

वासधौतिः ।

चतुरङ्गुलविस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्गिलेत् ।
पुनः प्रत्याहरेदेतत् प्रोच्यते धौतिकर्मकम् ॥ ४१ ॥

चार अंगुलका चौडा और (कमसों कम पाँच हाथ) लम्बा महीन कपडा लेकर धीरे धीरे निगलजाये फिर वाकों धीरे धीरे निकाल बाहर करै इसको वासधौति कहते हैं ॥ ४१ ॥

वासधौतिफलम् ।

गुल्मज्वरप्लीहकुष्ठं कफपित्तं विनश्यति ।
आरोग्यं बलपुष्टिश्च भवेत्तस्य दिने दिने ॥ ४२ ॥

वासधौतिके अभ्यास करनेसे गुल्मरोग ज्वररोग प्लीहरोग कुष्ठरोग तथा कफ और पित्तके रोगोंको नाश करता है

और आरोग्य रखता तथा बल पुष्टाई (अंगसुख) दिन प्रति दिन देता है ॥ ४२ ॥

मूलशोधनम्।

अपानक्रूरता तावद्यावन्मूलं न शोधयेत्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मूलशोधनमाचरेत् ॥ ४३ ॥

जबतक मूल शोधन (अर्थात् गुदाके द्वारा) साफ नहीं होता तबतक अपानकी क्रूरता अर्थात् (करडापन बना रहता है) और गुदाके वायु (पवन) कष्टसे निकलता है। इससे सब प्रकारके यत्नकर मूलशोधन करना चाहिये॥ ४३॥

पीतमूलस्य दण्डेन मध्यमाङ्गुलिनापि वा।
यत्नेन क्षालयेत् गुह्यं वारिणा च पुनः पुनः ॥४४॥

कच्ची हरदीकी जडसे वा मध्यमा (बीचकी) अंगुलीसे बार बार यत्नके सहित जलद्वारा गुदाका द्वार साफ करना चाहिये ॥ ४४ ॥

वारयेत्कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्णं निवारयेत्।
कारणं कान्तिपुष्ट्योश्च दीपनं वह्निमण्डलम् ॥४५॥

मूलशोधनके द्वारा कोठें कठिन (अर्थात् पेटके भीतरको करडापन) तथा आमकी अजीर्णता दूर हो जाय है और कांति (तेज) कों करवेवारो तथा पुष्टता देहमें देवेवारो तथा जठराग्निकों बढायवेवारो है ॥ ४५

वस्तिप्रकरणम्।

जलबस्तिः शुष्कबस्तिर्बस्तिःस्याद्द्विविधा स्मृता।
जलबस्ति जलेकुर्याच्छुष्कबस्ति सदा क्षितौ॥४६॥

वास्ति (कर्म) दो प्रकारकी है जलवास्ति और शुष्क (सूखी) वास्ति जलवस्ति तौ जलसों होई है और शुष्क वस्ति थलमें साधन करनी चाहिये ॥ ४६ ॥

जलवस्तिविधिः ।

नाभिमग्नजले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनम् ।
आकुञ्चनं प्रसारं च जलबस्तिं समाचरेत् ॥ ४७ ॥

टूंडी डब जाय इतने जलमें बैठकर उत्कट आसन (आगे कहेंगे) बैठकर गुदादेशकों सकोडे और फैलावे इसको जल-वस्ति कहते हैं ॥ ३७ ॥

जलवस्तिफलम् ।

प्रमेहं च उदावर्तं क्रूरवायुं निवारयेत् ।
भवेत् स्वच्छन्ददेहश्च कामदेवसमो भवेत् ॥ ४८ ॥

जलबस्तिके साधनसे प्रमेहरोग उदावर्तरोग क्रूरवायु (कुपित पवन) इनको दूर करै और देह (अंग) अपनेही काबूमें रहै और कामदेवके समान रुपवान् हो जाता है॥ ४८॥

स्थलवास्तिविधिः ।

बास्तं पश्चिमोत्तानेन चालयित्वा शनैरधः ।
अश्विनीमुद्रया पायुमाकुंचयेत्प्रसारयेत् ॥ ४९ ॥

थलहीमें पीठकी ओर उत्तान होकर पडै और क्रमशः गुदाके द्वारको चलावै इसी भांति अश्विनीमुद्रा (जो आगे कहेंगे) उसके द्वारा गुदाको सकोडे और फैलावे (चौडी) करै ऐसा करनेसे थलवास्ति साधीजाय ॥ ४९ ॥

स्थलवस्तिफलम्।

एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषं न विद्यते।
विवर्द्धयेज्जाठराग्निमामवातं विनाशयेत् ॥ ५० ॥

इसी भाँति थलबस्तिके साधन करनेसों कोष्ठ (कोठे) में दोष (वात) पित्त कफादि नहीं रहते और (उदरमें) जठराग्नि है वह बढ जाती है और आमवातरोगभी नाश होई है ॥ ५० ॥

नेतिविधिः।

वितस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मकम् ॥ ५१॥

बीतभरका महीन डोरा नाकके छेदोंमें होकर डाले पीछे उसको मुखके द्वारा निकासा करै। इसको नेतिकर्म कहते हैं ॥ ५१ ॥

नेतिफल।

साधनान्नेतिकर्माणि खेचरीं सिद्धिमाप्नुयात्।
कफदोषं विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ५२ ॥

नेतिकर्मके साधन करनेसो खेचरी(आकाशको जानेआने) की सिद्धि हो जाती है और कफके दोषको नाश करे है और दिव्यदृष्टि (अर्थात् न दीखती चीजभी) देखसके ॥५२॥

लौलिकीविधि।

अमन्दवेगे तुन्दं च भ्रामयेदुभपार्श्वयोः।
सर्वरोगान्निहन्तीह देहानलविवर्द्धनम् ॥ ५३ ॥

अति प्रबल वेगसों पेटकों दोनों बगल घुमावे इसीका नाम लौलिकी योग है यह सब भाँतिके रोगोंको नाश करै है और देहस्थ जो अग्नि है ताकों बढावै है अर्थात् अन्नको पचावे है ॥ ५३ ॥

त्रोटकविधि ।

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत् ।
पतंति यावदाश्रूणि त्रोटकं प्रोच्यते बुधैः ॥ ५४ ॥

पलकका भाँजना बंद करके किसी छोटी चीजकी ओर जबतक कि आँसू न गिरें इकटक देकता रहै याहीको बुद्धिमान् त्रोटक योग कहते हैं ॥ ५४ ॥

त्रोटकफलम् ।

एवमभ्यासयोगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम् ।
नेत्ररोगा विनश्यान्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ५५॥

इसी प्रकार त्रोटक (योग) के अभ्यास करवेसों शांभवी (मुद्रा) सिद्धि हो जाय है और नेत्रके सब रोगनकों नाश करे हैं और दिव्यदृष्टि होय है ॥५५ ॥

कपालभातिविधिः ।

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः ।
भालभातिं त्रिधा कुर्यात् कफदोषं निवारयेत्॥५६॥

कपालभाति योग तीन प्रकारका है । (वातक्रम) (व्युत्क्रम) और (शीत्क्रम) साधनसों कफके सबरे रोम नाश होय हैं ॥ ५६ ॥

वातक्रमकपालभातिः ।

इडया पूरयेद्वायुं रेचयेत् पिङ्गलां पुनः ।
पूरयेद्वा पिङ्गलया पुनश्चन्द्रेण रेचयेत् ॥ ५७ ॥

इडा अर्थात् (नाकके बायें छेद) के द्वारा पवनको खैंचके भरै और पिंगला अर्थात् (दहने नाकके छेदसों) निकारै याही प्रकार दहने नाकके छेदसों पवन भरकर फिर बायें छेदसों निकार देवे । इसे वातक्रमकपालभाति कहें हैं ॥ ५७ ॥

पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु चालयेत् ।
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ॥ ५८ ॥

जब पूरक अथवा रेचक अर्थात् श्वास खैंचै और निकारै तब जल्दी न करै क्रमसों धीरें धीरें साधै ऐसे अभ्यास (योग) करनेसों कफके दोष दूर करै है ॥ ५८ ॥

व्युत्क्रमकपालभातिः ।

नासाभ्यां जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत् ।
पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेष्मदोषं निवारयेत् ॥ ५९ ॥

दोनों नाकके छेदोंसे जलको खैंचकर फिर मुखकी राहसों गेरतौ जाय और मुखकी राहसेभी जल पीपीके फिर जल नाककी राह गेरतौ जाय इसको व्युत्क्रम कपालभाति कहते हैं और कफके सबरे दोषोंको दूर करै है ॥ ५९ ॥

शीत्क्रमकपालभातिः ।

शीत्कृत्य पीत्वा वक्त्रेण नासानालैर्विरेचयेत् ।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवसमो भवेत् ॥ ६० ॥

न जायते च वार्द्धक्यं जरा नैव प्रजायते ।
भवेत् स्वच्छंददेहश्च कफदोषं निवारयेत् ॥ ६१ ॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां महर्षिघेरण्डनृपचण्डकापालिसंवादे षट्कर्मसाधनं नाम प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

मुखसों शीत्कार कर (सुर सुर) कर पानी पीवों और वाकों नाकके छेदासे गिराय देवे इसको शीत्कम कपालभाति कहते हैं। या प्रकार योगाभ्यास करवेसो मनुष्य कामदेवके समान (कांतिवारो) हो जाय। और बुढापेकी निर्बलता शरीरमें नहीं आइ सके और देह अपने काबूमें रहे है और कफके सब दोषनकों दूर करै है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां चारों संप्रदायि वामन राजादिके गुरु बडे चौबे श्री ९ कल्याणचंदात्मज राधाचन्द कल्पित ब्रज भाष्यभाषानुवादसहित षट्कर्मसाधनं नाम प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

द्वितीयोपदेशः २ ।

अथासनविधिमाह ।

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः ।
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितं पुरा ॥ १ ॥
तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम् ।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम् ॥ २ ॥

घेरण्ड महाराजनें कह्यौ कि धरतीमें जितने जीवजन्तु हैं इतनेही आसन हैं और शास्त्रकारोंने अखीर दर्जा चौराशी

लाख योनि संख्या ठहराई है याहीसों प्रथम शिव (महादेव) जीनें चौरासी लाख आसन कहे हैं परंतु उनमें चौराशि सौ, और कमसे कम चौराशी आसन श्रेष्ठ हैं उनमेंसों भी केवल बत्तीस आसन मनुष्यलोकके लिये अच्छे हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथासनभेदाः ।

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वस्तिकम् ।
सिंहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ॥ ३ ॥
मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च ।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानं उत्कटं संकटं तथा ॥ ४ ॥
मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम् ।
उत्तानमण्डुकं वृक्षं मण्डूकं गरुडं वृषम् ॥ ५ ॥
शलभं मकरं उष्ट्रं भुजङ्गं च योगासनम् ।
द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्यलोके च सिद्धिदम् ॥ ६ ॥

सिद्धासन १, पद्मासन २, भद्रासन ३, मुक्तासन ४, वज्रासन ५, स्वस्तिकासन ६, सिंहासन ७, गोमुखासन ८, वीरासन ९, धनुरासन १०, मृतासन ११, गुप्तासन १२, मत्स्यासन १३, मत्स्येंद्रासन १४, गोरक्षासन १५, पश्चिमोत्तानासन १६, उत्कटासन १७, संकटासन १८, मयूरासन १९, कुक्कुटासन २०, कूर्मासन २१, उत्तानकूर्मासन २२, उत्तानमण्डूकासन २३, वृक्षासन २४, मंडूकासन २५, गरुडासन २६, वृषभासन २७, शलभासन २८, मकरासन २९, उष्ट्रा-

सन ३०, भुजंगासन ३१, योगासन ३२ ये बत्तीस आसन मनुष्यलोकके लिये सिद्धि देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ ६ ॥

सिद्धासनविधिः ।

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटितं संपीड्य गुल्फेतरं
मेढ्रे संप्रणिधाय तं तु चिबुकं कृत्वा हृदि स्थायिनम् ।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरन्तरं ।
मोक्षं चैव विधीयते फलकरं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ ७॥

जितेंद्रिय साधक पांयकी एडीको योनिस्थान(अंडकोश) के नीचे भिडावे और फिर दूसरी एडी (गुल्फ) लिंगके ऊपर धरै फिर डाढीको छातीमें लगावै फिर इंद्रियनको (रोक) साधकर अर्थात् एक ध्यानमें रखकर दृष्टिको एकजगहमें राख कर भौंहके बीचके स्थानकों देखे या प्रकार करवेसों सिद्धासन कह्यो जाय है और यह आसन (मोक्ष) फल तथा सर्व सुखको देनेवारो है ॥ ७ ॥

पद्मासनविधिः ।

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना कृत्वा कराभ्यां दृढम् ।
अंगुष्ठे हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्
एतद्व्याधिविनाशकारणपरं पद्मासनं चोच्यते॥८॥

दहने पाँयकों बाँई जाँघपर धर और दाहनी जाँघपर बायो पाँय धरकर और पीछेकी ओरसे दाँये हांथसो दाँये पाँयके अंगूठाको और बाँये हाथसों बाँये पाँयके अंगूठाको गाढौ पकरे या भाँति डाढी (गुल्फ) छातीपर धरकर नाकके

अग्र (आगे) के भावकों देखे। याको नाम पद्मासन है। यह आसन सबरी व्याधि (रोग) निकों नाश करै है॥ ८॥

भद्रासनविधिः।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितः।
पदाङ्गुष्ठे कराभ्यां च धृत्वा च पृष्ठदेशतः॥ ९॥
जालन्धरं समासाद्य नासाग्रमवलोकयेत्।
भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशकम्॥ १०॥

दोनों एडी अंडकोशको नीचे उलटके धरे फिर पीठकी ओरसे दोनों हाथोंसे दोनों पाँयनिके अंगूठानको पकरै और जालंधरबंध (आगे कहेंगे) करके नाकके आगेके भागको ध्यान कर देखे इसका नाम (भद्रासन) है और यह आसन सबरे रोगनिकौ नाश करै॥ ९॥ १०॥

मुक्तासनविधिः।

पायमूले वामगुल्फं दक्षगुल्फं तथोपरि।
शिरोग्रीवासमं कार्यं मुक्तासनं तु सिद्धिदम्॥ ११॥

बाईं एडी गुदाकी जडमें लगावे वाहीके ऊपर दाँई एडी राखै और शिर कंठ समानभाव राखै बिलकुल हलने न पावै और सीधौ होकर बैठे इसकौ मुक्तासन कहते हैं। यह आसन (साधकको) सिद्धि (सब भाँति) की देवे वारौ है॥ ११॥

वज्रासनविधिः।

जङ्घाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदपार्श्वे पदावुभौ।
वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धिदायकम्॥ १२॥

दोनों जाँघोंकौं वज्रके आकार (समान) करके पीछे गुदाके दोनों तरफ दोऊ पाँय भिडावै। इसको वज्रासन कहते हैं। यह आसन योगियोंको सिद्धिका देवेवारौ है ॥ १२ ॥

स्वस्तिकासनविधिः ।

जानूर्वोरन्तरे कृत्वा योगी पादतले उभे ।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥१३॥

दोनों पींडुरी दोनों जाँघोंके बीच करके दोनों पाँयनिको तलभी उसीके मध्यमें धरे और ऐठ छोडकें सरलभाव शरीर करकें बैठे। यह स्वस्तिकासन है ॥ १३ ॥

सिंहासनविधिः ।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोर्ध्वतां गतः ।
चितिमूलो भूमिसंस्थः कृत्वा च जानुनोपरि॥ १४॥
व्यक्ताव्यक्तौ जलन्ध्रं च नासाग्रमवलोकयेत् ।
सिंहासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशकम् ॥ १५ ॥

दोनों एडी (गुल्फ) अंडकोश (पेलडे) के नीचे उलटकर आपुसमें भिडायकें धरै और ऊपरकी ओरं बाहर करले और दोनों पिंडुरी भूमि (धरती) में लगाय दे और पिंडुरीनिके ऊपर मुखकों खोलकर ऊँची करके जालंधरबंध (आगे कहेंगे) के आश्रयसों नासिका (नाक) के अग्रभागकों देखते रहै इसकों (सिंहासन) कहते हैं और याके साधनसों सर्व रोग नाशकों प्राप्त होय हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

गोमुखासनविधि ।

पादौ च भूमौ संस्थाप्य पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत् ।
स्थिरकायं समासाद्य गोमुखं गोमुखाकृतिः ॥ १६॥

दोनों पाँयनिकों भूमिमें जमायकें पीठकी बगलोंमें लगावै और शरीरकों ठहरायके बैठे तौ यह गोमुखके आकार देख पडेगो इसको नाम गोमुखासन है ॥ १६ ॥

वीरासनविधिः ।

एकपादमथैकस्मिन् विन्यसेदूरुसंस्थितम् ।
इतरस्मिंस्तथा पश्चाद्वीरासनमितीरितम् ॥ १७ ॥

एक जंघाके ऊपर एक पाँय धरकें दूसरो पाँय पीछेकी ओर धरै इसको वीरासन कहते हैं ॥ १७ ॥

धनुरासनविधिः ।

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्मम् । कृत्वा धनुस्तुल्यपरिवर्तिताङ्गं निधाय योगी धनुरासनं तत् ॥ १८ ॥

दोनों पाँय धरतीमें समान भावसें लकडियोंकी भाँति फैलाय दे और दोनों हाथ पीठकी ओरसे लाकर दोनों पाँयनिको पकडे और देहकों धनुषके आकार करके और उलटेपुलटे इसको योगीलोग धनुरासन कहते हैं ॥ १८ ॥

मृतासनविधिः ।

उत्तानशववद्भूमौ शयानं तु शवासनम् ।
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम् ॥ १९ ॥

मरे भये मनुष्यकी तरह धरातलमें शयन करनेहीसे मृता-

सन होता है इसको शवासनभी कहते हैं यह आसन श्रम (परिश्रम मेहनत) कौ दूर करै है और चित्तको विश्राम करवेवारो है ॥ १९ ॥

गुप्तासनविधिः ।

12 जानुनोरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत् ।
पादोपरि च संस्थाप्य गुदं गुप्तासनं विदुः ॥ २० ॥

दोनों घोटुवोंके बीचमें दोनों पावोंको गुप्तभावसों राखै और दोनों पादौंपै गुदाको धरै इसको गुप्तासन कहते हैं ॥ २०

मत्स्यासनविधिः ।

13 मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत् ।
कूर्पराभ्यां शिरो वेष्ट्य मत्स्यासनं तु रोगहा ॥ २१ ॥

मुक्तपद्मासन लगायकें हाथसें दोनों घोटुवोंके शिरको लपेटे और चित्त होके सोय जावे इसको मत्स्यासन कहें हैं और यह सबरे रोगनिकों दूर करै है ॥ २१ ॥

पश्चिमोत्तानआसनविधिः ।

16 प्रसार्य्य पादौ भुवि दण्डरूपौ संन्यस्तभालश्चितियुग्ममध्ये । यत्नेन पादौ च धृतौ कराभ्यां
योगीन्द्रपीठं पश्चिमोत्तानमाहुः ॥ २२ ॥

दोनों पाँय धरतीमें लकडियोंकी तरह फैलायके यत्नके सहित दोनों पाँय हाथनिसों पकरै और दोनों जाँघोंके बीच अपने शिरको धरै इसको योगींद्र (योगीनके इंद्र) याकों पश्चिमोत्तान आसन कहें हैं ॥ २२ ॥

मत्स्येन्द्रासनविधिः।

उदरं पश्चिमाभासं कृत्वा तिष्ठति यत्नतः।
नम्राङ्गवामपादं हि दक्षजानूपरि न्यसेत्॥ २३॥
तत्र याम्यं कूर्परं च याम्यं करे वक्त्रकम्।
भ्रुवोर्मध्ये गतां दृष्टिं पीठं मात्स्येन्द्रमुच्यते॥ २४॥

पेटको पीठकी तरह करै अर्थात् पेटको और वायें पाँयको नवायके दाहने पाँयकी जाँघपर धरै याही भाँति बायें पाँयपैं दाहने पाँयकी एडी धरै। इनकों दाहने हाथपै मुखकों धरै और भौंहनिको मध्यमें (दृष्टि राखे) अर्थात् देखे याकों मात्स्येंद्रासन कहैं हैं॥ २३॥ २४॥

गोरक्षासनविधिः।

जानूर्वोरन्तरे पादौ उत्तानाव्यक्तसंस्थितौ।
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः२५
कण्ठसङ्कोचनं कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत्।
गोरक्षासनमित्याह योगिनां सिद्धिकारणम्॥ २६॥

दोनों जाँघ और पींडुरीनके बीचमें दोनों पाँय उत्तान करके गुप्त भावसों राखे फिर दोनों हाथनसों दोनों एडी पकड लेय ता पीछे कंठको संकुचित (सुकोडकें) नाकके आगेके भागकों देखै याकौ गोरक्षासन कहैं हैं यह योगियोंकों सिद्धिको देवेवारो है॥ २५॥ २६॥

उत्कटासनविधिः।

अंगुष्ठाभ्यामवष्टभ्य धरां गुल्फे च खे गतौ।

तत्रोपरि गुदं न्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनम् ॥ २७ ॥

पाँयकों दोनों अंगूठेके बलसों भूमि (धरती) में धरकें दोनों एडीनको निरालम्ब होके उठायदे और उन्हीं एडीनपैं गुदाको धरे याकों उत्कटासन कहैं हैं ॥ २७ ॥

संकटासनविधिः ।

18 वामपादं चितेर्मूलं संन्यस्य धरणीतले ।
पाददंडेन याम्येन वेष्टयेद्वामपादकम् ।
जानुयुग्मे करौ युग्ममेतत्त संकटासनम् ॥ २८ ॥

बाँये पाँय और अंगूठाकों भूमिमें लगाय दे और दाँये पाँयसों बाँयों पाँय लपटले और फिर दोनों जाँघोंपर दोनों हाथ धरै इसको संकटासन कहते हैं ॥ २८ ॥

मयूरासनविधिः ।

19 धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्यां तत्कूर्परे स्थापितनाभिपार्श्वम् । उच्चासनो दण्डवदुत्थितः खे मयूरमेतत्प्रवदन्ति पीठम् ॥ २९ ॥

हाथके दोनों तलोंसे भूमिको धारण करै पीछे हाथकी दोनों गाँठनकों नाभिके दोनों बगलोंमें धारण करनों और दोनो पाँयनिको फैलायके ऊंचे आसनसे लकडियोंकी तरह आकाशमें देहको उठावै यह मयूरासन है ॥ २९ ॥

कुक्कुटासन विधिः ।

20 पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोन्तरे करौ ।
कूर्पराभ्यां समासीनो मञ्चस्थः कुक्कुटासनम् ॥ ३० ॥

पद्मासन बैठकर दोनों जाँघ और पींडुरीनके बीचमें हाथको धसेरकें दोनों हाथोंकी कोन्हीनपें मंच (पलका) की तरह उठके बैठे इसको कुक्कुटासन कहैं हैं ॥ ३० ॥

21 कूर्मासनविधिः।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितौ।
ऋजुकायाशिरोग्रीवं कूर्मासनमितीरितम् ॥ ३१ ॥

दोनों एडिनकों अंडकोश (पेलडे) के नीचे उलटके धरै और शिर (माथो) और ग्रीवा तथा शरीरको सीधे धरकर रखै इसको कूर्मासन कहैं हैं ॥ ३१ ॥

22 उत्तानकूर्मासनविधिः।

कुक्कुटासनबन्धस्थं कराभ्यां धृतकन्धरम्।
पीठं कूर्मवदुत्तानमेतदुत्तानकूर्मकम् ॥ ३२ ॥

पहिले कुक्कुटासन (पूर्व कह चुके हैं) बाध लेय फिर दोनों हाथोंसे कधा पकडके कछुआकी तरह उत्तान हो जाय इसको उत्तानकूर्मासन कहैं हैं ॥ ३२ ॥

23 उत्तानमण्डूकासनविधिः।

मण्डूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां धृतं शिरः।
एतद्भेकवदुत्तानमेतदुत्तानमण्डुकम् ॥ ३३ ॥

मण्डूकासननमें बैठकर हाथनके टकुनानिसों माथोधारण करके उत्तान हो जावै इसहीको (घेरण्डऋषिने) उत्तानमण्डूकासन कह्यौ है ॥ ३३ ॥

वृक्षासनविधिः ।

वामोरुमूलदेशे च याम्ये पादौ निधाय तु ।
तिष्ठत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः ॥ ३४ ॥

दायें पाँय बाँई जाँघकी जड (मूल) में धरैं और समानभावसे वृक्षकी भाँति (तरह) ठाडौ रहे याकौ वृक्षासन कहैं हैं ॥ ३४ ॥

मण्डूकासनविधिः ।

पृष्ठदेशे पादतलौ अङ्गुष्ठे द्वे च संस्पृशेत् ।
जानुयुग्मं पुरस्कृत्य साधयेन्मण्डुकासनम् ॥ ३५ ॥

दोनों पाँय पीठकी तरफ करके उनके दोनों अंगूठे परस्पर एकको एकसों मिलायके तथा दोनों जाँघं सामनेकी ओर धरे इस आसनको मंडूकासन कहैं हैं ॥ ३५ ॥

गरुडासनविधिः ।

जंघोरुभ्यां धरां पीड्य स्थिरकायो द्विजानुनी ।
जानूपरि करं युग्मं गरुडासनमुच्यते ॥ ३६ ॥

दोनों जाँघोंसे तथा दोनों पींडुरीनसौं धरतीको दबावे और दोनों पींडुरीनपैं दोनों हाथ धरै इसकौ गरुडासन कहैहैं ॥ ३६ ॥

वृषासनविधिः ।

याम्यगुल्फे पायुमूलं वामभागे पदेतरम् ।
विपरीतं स्पृशेद्भूमिं वृषासनमिदं भवेत् ॥ ३७ ॥

गुदाके द्वारको दक्षिण एडीके ऊपर धरकें उसीके बाँये भागमें बाँये पाँयको उलट करके धरै और धरतीको छीवें इसको वृषासन कहते हैं ॥ ३७ ॥

शलभासनविधिः ।

अधास्य शेते करयुग्मवक्षे भूमिमवष्टभ्य करयो-
स्तलाभ्याम् । पादौ च शून्ये च वितस्ति चोर्ध्वं
वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्राः ॥ ३८ ॥

नीचे मुख करके सोय जाय और वक्षस्थलमें दोनों हाथ धरके दोनों करतलोंसों धरती पकडकर दोनों पाँय शून्य भागमें बिलाँदभर ऊँचे राखे याको नाम शलभासन मुनिजन कहैं हैं ३८

मकरासनविधिः ।

अधास्य शेते हृदयं निधाय भूमौ च पादौ प्रसार्यमाणौ ।
शिरे च धृत्वा करदण्डयुग्मे देहाग्निकारं मकरासनं तत् ३९

धरतीमें पेट धर सोय जाय और नीचे मुख करके छातीको धरतीमें लगायके और दोनों पाँय फैलाय दे फिर दोनों हाथ-निसों माथो धारण करै याको मकरासन कहै हैं ॥ ३९ ॥

उष्ट्रासनविधिः ।

अधास्य शेते पदयुग्मव्यस्तं पृष्ठे निधायापि धृतं
कराभ्याम् । आकुंचयेत्सम्यगुदरास्यगाढं उष्ट्रं
च पीठं योगिनो वदन्ति ॥ ४० ॥

अधोवदन शयन करके दोनों पाँय उलटके पीठकी ओर लावे पीछे दोनों हाथोंसे इन्ही पैरोंको धरके मुख और पेट दृढभावसों सकोड लेवे इसको उष्ट्रासन कहे हैं ॥ ४० ॥

भुजंगासनविधिः ।

अंगुष्ठनाभिपर्य्यंतमधोभूमौ विनिन्यसेत् ।
करतलाभ्यां धरां धृत्वा ऊर्ध्वं शीर्षं फणीव हि॥४१॥

देहाग्निर्वर्द्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम् ।
जागर्ति भुजगीदेवी साधनाद् भुजगासनम् ॥ ४२ ॥

पाँयके अँगठासे लेकर नाभिपर्यन्त देहकी नीची और बाएँ भाग धरातलमें अच्छी तरह स्थापन करके हाथसों दोनों पंजानको धरतीमें अवलंबन करै और सर्पके फनकी तरह शिरके भागको उठावे याको भुजंगासन कहे हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

योगासनविधिः ।

उत्तानौ चरणौ कृत्वा संस्थाप्य जानुनोपरि ।
आसनोपरि संस्थाप्य उत्तानं करयुग्मकम् ॥ ४३ ॥
पूरकैर्वायुमाकृष्य नासाग्रमवलोकयेत् ।
योगासनं भवेदेतद् योगिनां योगसाधने ॥ ४४ ॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां ऋषिघेरण्डनृपचंडकापालिसंवादे-
द्वात्रिंशासनवर्णनं नाम द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

दोनों पाँयनिको चित्त कर दोनों जाँघोंके ऊपर संस्थापित करकें दोनों हाथ उत्तानभावसे आसनके ऊपर राखै पीछे पूरक (प्राणायाम) के सार द्वारा पवन खेंचकें कुंभक (डाटै) और उस समय नाकको आगेको भाग ताको देखे इसको योगासन कहते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

इति श्रीघेरंडसंहिताश्रीमथुरास्थदक्षगोत्रोद्भवचातुर्वेदिशर्मश्री
६ कल्याणचंद्रात्मजराधाचंदविरचितव्रजभाषाटीकायां
आसनवर्णनो नाम द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

तृतीयोपदेशः ३।

अथ मुद्राकथनप्रकरणम्

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबन्धो महाबन्धो महावेधश्च खेचरी ॥ १ ॥
विपरीतकरी योनिर्वज्रोणी शक्तिधारिणी।
ताडागी माण्डवी मुद्रा शांभवी पंचधारिणी ॥ २ ॥
अश्विनी पाशिनी काकी मातङ्गी च भुजङ्गिनी।
पंचविंशतिमुद्राणि सिद्धिदानीह योगिनाम् ॥ ३ ॥

महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जलंधर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरी, योनि, वज्राणी, शक्तिधारिणी, ताडागी, मांडवी, शांभवी, धारणामुद्रा, पांच तरहकी है। जैसे-पार्थिवीधारणा, आम्भसीधारणा, वैश्वनरीधारणा, वायवीधारणा, नभोधारणा और तापीछें अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी, भुजंगिनी ॥ १-३ ॥

मुद्राणां पटलं देवि कथितं तव संनिधौ।
येन विज्ञातमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित्।
प्रीतिदं योगिनां चैव दुर्लभं मरुतामपि ॥ ५ ॥

श्रीमहादेव गौरीसे बोले कि, हे देवि! मैंने तेरे आगे मुद्रानिके नाम कहे हैं। इनके जाननेसोंही सब भाँतिकी सिद्धिका लाभ होइ है। यह सब विषय परम गोपनीय है जिसे किसीको कभी नहीं देना। क्योंकि विना प्रतिज्ञाके साधि हो नहीं सकते

और कदापि बतायभी दो तौ चंचल लोग दोषित करेंगे और न बन सकेंगे तौ इस विद्याकौ झूंठी कहकर दृढ प्रतिज्ञोंकोभी नहीं देना, ये सब मुद्रा योगियोंकोभी परम प्रीति देनेवारी है। यह मुद्रा देवताओंकोभी दुर्लभ हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

महामुद्राविधिः ।

पायुमूलं वामगुल्फे संपीड्य दृढयत्नतः ।
याम्यपादं प्रसार्याथ करे धृतपदांगुलः ॥ ६ ॥
कण्ठसंकोचनं कृत्वा भ्रुवोर्मध्यं निरीक्षयेत् ।
महामुद्राभिधा मुद्रा कथ्यते चैव सूरिभिः ॥ ७ ॥

गुदामूलकों बांई एडीसों बहुत ताकतसों दबावे और दाँये हाथको फैलायके हाथसों पाँयकी अंगुली धरै फिर कंठको सकोडकें भौंहके मध्यमें ध्यान लगा देवे इसको पंडितगण महामुद्रा कहें हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

मुद्राफलम् ।

क्षयकासं गुदावर्तं प्लीहां जीर्णज्वरं तथा ।
नाशयेत् सर्वरोगांश्च महामुद्रातिसेवनात् ॥ ८ ॥

उपरोक्त (महामुद्रा) को अधिक सेवन करवेंसों क्षयसों भई खांसी, गुदावर्त (गुदाके चारों तर्फ वारे फोडा) तापतिल्ली और जीर्ण ज्वर (पुराना ज्वर), तथा और सब तरहसे रोग या महामुद्राके सेवनसों नाश होई है। ॥ ८ ॥

नभोमुद्राविधिः ।

यत्र यत्र स्थितो योगी सर्वकार्येषु सर्वदा ।

ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा धारयेत्पवनं सदा।
नभोमुद्रा भवेदेषा योगिनां रोगनाशिनी ॥ ९ ॥

जब जब योगी काहू काममें लगे तब तब सर्वदाही ऊपरकी ओर जीभ करके कुंभकके द्वारा स्थिर होकर पवनको धारण किया करै यह अभ्यास सदा रखनेसे योगी समस्त रोगनिते निवृत्त होई हैं इसको नभोमुद्रा कहते हैं ॥ ९ ॥

उड्डीयानबंधविधिः।

उदरे पश्चिमं तानं नाभेरूर्ध्वं तु कारयेत्।
उड्डीयानं कुरुते यत् तदविश्रान्तं महाखगः।
उड्डीयानं त्वसौ बन्धो मृत्युमातङ्गकेसरी ॥ १० ॥

नाडीके ऊपरका भाग पश्चिमद्वारको उदरके समभावमें सिकोडनों चाहिये अर्थात् उदरके मध्यम भागस्थ गुह्यादि चक्रस्थित नाडीसमूहकों नाभीके ऊपर सिकोडके उठानों चाहिये इसको उड्डीयान बंधन कहते हैं यह उड्डीयान बंध मौतके लिये अर्थात् गजरूप मृत्युको सिंहके समान है॥ १० ॥

उड्डीयानबंधफलम्।

समग्राद्बन्धनादेतत् उड्डीयानं विशिष्यते।
उड्डीयानेसमभ्यस्तेमुक्तिः स्वाभाविकी भवेत्॥ ११॥

जितने मुद्राबंध कहे गये हैं उन सबमें यह उड्डीयान बंध बहुत उत्तम है इस उड्डीयान बंधके साधनसे आपही आप मुक्ति होई है ॥ ११ ॥

जालंधरबंधविधिः।

कण्ठसंकोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत्।

जालंधरकृते बंधे षोडशाधारबंधनम् ।
जालंधरं महामुद्रा मृत्योश्च क्षयकारिणी ॥ १२ ॥

कंठको सकोड करके छातीपर डाढी धरवेहीसों जालंधर बंध कह्यौ जाय है याके साधन करवेसों सोलह भाँतिके आधार बंध हुआ करते हैं यह मौतकाभी नाशक है ॥ १२ ॥

जालंधरबंधफलम् ।

सिद्धं जालंधरं बंधं योगिनां सिद्धिदायकम् ।
षण्मासमभ्यसेत् यो हि स सिद्धोनात्रसंशयः॥ १३॥

यह जालंधर बंध स्वयं सिद्ध है यह योगियोंको सिद्धि देवेवारो है जो बुद्धिमान् छः महीना इसका साधन करता है वह अवश्य सिद्ध हो जाता है इसमें संशय नहीं है ॥ १३ ॥

मूलबंधविधि

पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुंचयेत्ततः ।
नाभिग्रन्थिं मेरुदंडं संपीडय यत्नतः सुधीः ॥ १४॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढबंधं समाचरेत् ।
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते ॥ १५ ॥

बाँये पाँयकी एडीसों गुदा–प्रदेशको सिकोडे वा पीछे टूंडीकी गाठको पीठकी हड्डीसे दबावे और उपस्थको दाँये एडीसों मजबूत दबाके राखै इसको मूलबंधन कहते हैं यह मुद्रा बुढापेको दूर करै है ॥ १४ ॥ १५ ॥

मूलबंधफलम् ।

संसारसागरं तर्तुमभिलषति यः पुमान् ।

विरलेषु गुप्तो भूत्वा मुद्रामेनां समभ्यसेत् ॥ १६ ॥
अभ्यासाद्बंधनस्यास्य मरुत्सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ।
साधयेद्यत्नतस्तर्हि मौनी तु विजितालसः ॥ १७ ॥

जो मनुष्य संसारसागरसे पार होनेकी इच्छा करै वे एकान्त-स्थानमें गुप्तभावसे इस मुद्राका अभ्यास करैं इस मूलबंधके अभ्याससे जरूर पवन (वायु) सिद्धि होई है इसके साधक आलसको छोडके मौनी हो यत्नपूर्वक इसको साधन करै ॥

महाबंधफलम् ।

महाबंधः परो बंधो जरामरणनाशनः ।
प्रसादादस्य बंधस्य साधयेत्सर्ववांछितम् ॥ १८ ॥

यह महाबंध (नामकीमुद्रा) सब मुद्राओंमें श्रेष्ठ है और बुढापे तथा मौतको नाश करै है इस महाबंधके प्रसादसों सब मनमाने मनोरथ पूर्ण होई है ॥ १८ ॥

महावेधविधिः ।

रूपयौवनलावण्यं नारीणां पुरुषं विना ।
मूलबंधमहाबंधौ महावेधं विना तथा ॥ १९ ॥
महाबंधसमासस्य उड्डानकुम्भकं चरेत् ।
महावेधः समाख्यातो योगिनां सिद्धिदायकः ॥ २० ॥

जैसे पुरुषके विना नारीको सुंदर रूप यौवन (जवानी) तथा लावण्यता निष्फल रहती हैं । वैसेही महावेधमुद्राके विना मूलबंध तथा महाबंधभी काऊ कामके नहीं रहते । पहले महाबंध मुद्रा करै फिर उड्डीयानबंध मुद्रा करके कुंभक

प्राणायामसे वायुको निरोध करवेहीसे महावेध मुद्रा कही जाती है यह मुद्रा महावेधके द्वारा योगिजन सर्वसिद्धिको पावे हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

महावेधफलम् ।

महाबंधमूलबंधौ महावेधसमन्वितौ ।
प्रत्यहं कुरुते यस्तु स योगी योगवित्तमः ॥ २१ ॥
न मृत्युतो भयं तस्य न जरा तस्य विद्यते ।
गोपनीयः प्रयत्नेन वेधोऽयं योगिपुंगवैः ॥ २२ ॥

जो साधक प्रतिदिन इस महावेधके सहित महाबंध और मूलबंधका साधन कियो करे हैं वेही योगियोंमें उत्तम योग विद्याके जाननेवारे कहे जाते हैं। मौत और बुढापा उनके पास कभी नहीं आय सकती। यह मुद्रा परम गुप्त रखवेके योग्य है योगिनमें श्रेष्ठ योगी इसको किसीसे नहीं कहते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

खेचरीमुद्राविधिः ।

जिह्वाधो नाडीं संछिन्नां रसनां चालयेत्सदा ।
दोहयेन्नवनीतेन लोहयंत्रेण कर्षयेत् ॥ २३ ॥
एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका दीर्घतां व्रजेत् ।
यावद्गच्छेद्भ्रुवोर्मध्ये तथा गच्छति खेचरी ॥ २४॥
रसना तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत् ।
कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ॥
भ्रुवोर्मध्ये गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ २५ ॥

जीभके नीचे जीभकी जड और जीभ इन दोनोंको जो नाडी जोडे रहती है उसको काट देवे और नित्यही जिह्वाके

अग्रभाग और जिह्वा (जीभ) के नीचे सदा चलाया करै। और जीभको नवनीत (माखन) से दुहा करै और लोहेकी (चोमटा) सों खेंच लेय। याही प्रकार रोज करनेसे जीभ लंबी हो जाती है। क्रमसे अभ्यास करते करते जीभको इस प्रकार लंबी कर देय कि जासों दोनों भौंहोंके बीचतक पहुँच जाय। फिर उसी जीभको क्रमसे तालुके बीच ले जाय। तालु देश मध्यस्थ (गड्ढाको) कपालकुहर कहते हैं। जीभको उसी तालुके गड्ढामें ऊपरको और उलटके प्रवेशित करै ता पीछे दोनों भौंहानिके मध्य (बीच) के भागको देखे याको खेचरी मुद्रा कहे हैं॥ २३॥ २५॥

खेचरीमुद्राफलम्।

न च मूर्च्छा क्षुधा तृष्णा नैवालस्यं प्रजायते।
न च रोगो जरा मृत्युर्देवदेहः स जायते॥ २६॥

जो मनुष्य या खेचरी मुद्राको साधन करे हैं उनको मूर्च्छा भूँख प्यास और आलस्य नहीं होई है और न रोग न बुढापो न मौत पास आवे और देवतानकीसी ताकी देह हो जाय२६

नाग्निना दह्यते गात्रं न शोषयति मारुतः।
न देहं क्लेदयन्त्यापो दंशयेन्न भुजङ्गमः॥ २७॥

और उनको आग नहीं जलाय सके पवन सुखाय नहीं सके तथा पानी न गीला कर सके तथा साँप काट नहीं सके है॥ २७॥

विपरीतकरीमुद्राविधिः ।

नाभिमूले वसेत्सूर्यस्तालुमूले च चन्द्रमाः ।
अमृतं ग्रसते सूर्यस्ततो मृत्युवशो नरः ॥ २८ ॥
ऊर्ध्वं च गमयेत्सूर्यं चन्द्रं च अध आनयेत् ।
विपरीतकरी मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥ २९ ॥
भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मे समाहितः ।
ऊर्ध्वपादः शिरो भूत्वा विपरीतकरी मता ॥ ३० ॥

नाभिकी जडमें सूर्य (सूर्यनाडी) वास करै है और मुखके तलुओंकी जडमें चंद्रमा (चंद्रनाडी) वास करै है जब नीचेसे सूर्य अपने तेजसों खेंचवेसों देहमें रहवेवारो अमृतको ग्रास कर लेय है तब मनुष्य मौतके वश होइ है । यालिये ऊपरकी ओरसों सूर्यकों उठानों चाहिये और नीचेकी ओरसों चंद्रमाको ले आनों चाहिये इसका नाम विपरीतकरी मुद्रा है सो सब तंत्रोंसे गुप्त है अर्थात् अंत कहुं नहीं कही गई । याकी विधि इसी तरह है कि धरतीमें माथेकों धरे और दोनों हाथनिसों धरतीको पकडकर पाँयनिको ऊपरकी ओर उठायके सीधा खडा करै और पूरक प्राणायामसे पवन खेंचकर कुंभकके द्वारा जहांतक ठहरे तबतक ठहरावे इसको विपरीतकरी मुद्रा कहते हैं ॥ २८-३० ॥

विपरीतकरीमुद्राफलम् ।

मुद्रेयं साधयेन्नित्यं जरां मृत्युं च नाशयेत् ।
स सिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेऽपि न सीदति ॥ ३१ ॥

जो मनुष्य इस मुद्राको रोज साधन करता है वह बुढापा और मृत्युसे बच्यो रहे है। फिर सब लोकनिमें सिद्ध हो जाता है और प्रलय होनेपरभी अभय रहता है ॥ ३१ ॥

योनिमुद्राविधिः।

सिद्धासनं समासाद्य कर्णं चक्षुर्नसो मुखम् ।
अंगुष्ठातर्जनीमध्यानामादिभिश्च साधयेत् ॥ ३२ ॥
काकीभिः प्राणसंकृष्य अपाने योजयेत्ततः ।
षट्चक्राणि क्रमाद्ध्यात्वा हुं हंसं मनुना सुधीः॥ ३३
चैतन्यमानयेद्देवीं निद्रिता या भुजाङ्गिनी ।
जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य करांबुजे ॥ ३४ ॥
शक्तिमयः स्वयं भूत्वा परं शिवेन संगमम् ।
नानासुखं विहारं च चिंतयेत्परमं सुखम् ॥ ३५ ॥
शिवशक्तिसमायोगादेकान्तं भुवि भावयेत् ।
आनंदं च स्वयं भूत्वा अहं ब्रह्मेति संभवेत् ॥ ३६॥
योनिमुद्रा परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा ।
सकृत्तु लाभसंसिद्धिः समाधिस्थः स एव हि ॥ ३७॥

प्रथम सिद्धासनसों बैठ फिर कान आँख नाक मुख ये चारों द्वारोंको अंगूठा तर्जनी मध्यमा अनामिका इन अँगुरियनसों ढाँक लेय अर्थात कानके दोनों छेदोंको दोनों अँगुठानसों दोनों आँखनकों दोनों तर्जनीनसों दोनों नाकके छेदोंको दोनों मध्यमानसों, मुखकों दोनो अनामिकानसों दाबै । फिर या मुद्रासों प्राणपवनकों खेंचै और फिर उसे अपानपवन

(अधोवायु) में मिलाय दे वाके बाद अंगमें छः चक्र है उनका ध्यान करै वाही समयमें (हुँ) और (हंस) इन दो मंत्रोंसे भुजंगिनी रूप कुंडलिनी देवीकों जगावै तथा जीवात्मा सहित वा कुंडलिनीको सहस्र कमलमें उठायकें ले जावै और वह साधक या प्रकार चिंता करे मानो मैं शक्तिमय होकर शिव (आनंद) के संगप्रसंगमें आसक्त होते भये परम आनंद भोग और विहार करता हूं तथा शिवशक्तिके संयोगसे मैंही आनंदमय (ब्रह्म हूं) इसको योनिमुद्रा कहते हैं यह मुद्रा परम गोपनीय है यह देवताओंको दुर्लभ है या मुद्राको एकबारभी कोई साधन करै तौ साधनेवारौ पुरुष सिद्ध हो जाय है इसके द्वारा बहुतही शीघ्र समाधि प्राप्त होवे है ॥ ३२-३७ ॥

योनिमुद्राफलम् ।

ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापी गुरुतल्पगः ।
एतैः पापैर्न लिप्यंते योनिमुद्रानिबंधनात् ॥ ३८ ॥
यानि पापानि घोराणि उपपापानि यानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति योनिमुद्रानिबंधनात् ।
तस्मादभ्यासनं कुर्याद्यदि मुक्तिं समिच्छति ॥ ३९ ॥

जो जन योनिमुद्राकौ साधन करैंहैं वे यदि ब्रह्मघाती (ब्राह्मणकों मारवेवारौ) बालघाती वा गर्भ गिरायवेवारौ दारू पीवेवारौ गुरुकी नारीसों मैथुन करवेवारौभी होइ तौभी पापमें नहीं सने है । औरभी जो बडे बडे पाप हैं तथा उपपाप हैं तिन सबकों योनिमुद्राकौ बांधवेवारो नष्ट कर देय है या कारण जो मुक्तिकी इच्छा करे सो याको साधन करै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

वज्रोणिमुद्राविधिः ।

धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्यां ऊर्ध्वं क्षिपेत्पाद-
युगं शिरः खे । शक्तिप्रबोधाय चिरजीवनाय
वज्रोणिमुद्रां मुनयो वदन्ति ॥ ४० ॥

दोनों हाथनिकी हथेरीसों धरतीके तलकों पकडकें दोनों पाँयनिकों ऊपर उठाय दे और माथोभी आकाशकी ओर उठा देवे केवल हाथके बल खडा रहै इसको मुनि (जन) वज्रोणि मुद्रा कहें हैं याके अभ्याससों अंगमें शक्ति (ताकत) आवे और सदा जिया करै अर्थात् अमर हो जावै ॥ ४० ॥

वज्रोणिमुद्राफलम् ।

अयं योगे योगश्रेष्ठो योगिनां मुक्तिकारणम् ।
अयं हितप्रदो योगो योगिनां सिद्धिदायकः ॥४१॥
एतद्योगप्रसादेन बिंदुसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ।
सिद्धे बिंदौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले ॥४२॥
भोगेन महता युक्तो यदि मुद्रां समाचरेत् ।
तथापि सकला सिद्धिर्भवति तस्य निश्चितम् ४३॥

यह मुद्रा साधनरूपी योगमें सब योगोंमें अच्छा (श्रेष्ठ) है और योगियोंकी मुक्ति (मोक्ष) कारण है और यह योग बहुत हितका करनेवारो है तथा योगियोंको सब तरहकी सिद्धि-कौ देवेवारो है । इसी योगके प्रसादसे कामसिद्धि, बिंदु जो (वीर्य) सिद्धि निश्चय होइ है अर्थात् वीर्य रुक गया और जब इस भाँति महायत्नसे वीर्यसिद्धि हो गये पीछे कहो भूत-

लमें कौन और सिद्धि न होइगी । और सबेरे बडे बडे भोगोंसे युक्त पुरुषभी यदि इस मुद्राका अभ्यास करै तो सब भाँतिकी सिद्धियाँ जरूर उसकों मिलेंगी ॥ ४१-४३ ॥

शक्तिचालनीमुद्राविधिः ।

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुंडली परदेवता ।
शयिता भुजगाकारा सार्द्धत्रिवलयान्विता ॥ ४४ ॥
यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवं पशुर्यथा ।
ज्ञानं न जायते तावत् कोटियोगं समभ्यसेत् ॥ ४५ ॥

मूलाधारमें आत्मशक्ति (आत्माकी ताकत) सबसों परे देवता कुंडलिनी सर्पके आकार साढे तीन लपेटाकी गुंडरी (गोला)बांधे सोय रही है । जबतक वह देहमें सोती रहै है तब-तक जीव पशुकी तरह अज्ञान(ज्ञानरहित)बन्धो रहै है सत्य और असत्य कछु नहीं जान पडता तबतक चाहें कोटिप्रकार योगाभ्यास करौ कभी सत्य ज्ञान नहीं होइगौ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

उद्घाटयेत्कपाटं च यथा कुंचिकया हठात् ।
कुंडलिन्याः प्रबोधेन ब्रह्मद्वारं प्रबोधयेत् ॥ ४६ ॥

इसी निमित्त कहा है कि जैसे तारेसों बंद किवार (कपाट) तारीसे झटपट खोलके भीतर पैठ जाय याही भाँति कुंडलि-नीके जानेपर ब्रह्मद्वार (माथे) को प्रभेद कियो जा सके हैं (चैतन्य कियो जाय है) कि जासों सत्य और असत्यको ज्ञान होइ हैं ॥ ४६ ॥

नाभिं संवेष्ट्य वस्त्रेण न च नग्नो बहिः स्थितः ।
गोपनीये गृहे स्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत् ॥ ४७ ॥

एक वस्त्रके द्वारा नाभिदेशको लपेटके काऊ गुप्त मकानमें बैठकर शक्तिचालनी मुद्राका अभ्यास करै किंतु नंगो ह्वैके बाहरके भागमें या योगका साधन करनों उचित है नहीं, अर्थात् यह योग नंगो ह्वैके गुप्तस्थानमें करनों चाहिये॥ ४७॥

वितस्तिप्रमितं दीर्घं विस्तारे चतुरङ्गुलम्।
मृदुलं धवलं सूक्ष्मं वेष्टनाम्बरलक्षणम्॥
एवमम्बरयुक्तं च कटिसूत्रेण योजयेत्॥ ४८॥

एक बिलाँद लम्बो और चार अंगुल चौडो कोमल (नरम) और महीन सुपेद कपडासों नाभिको लपेटके फिर उस वस्त्रको कमरसों बांधे॥ ४८॥

भस्मना गात्रसंलिप्तं सिद्धासनं समाचरेत्।
नासाभ्यां प्राणमाकृष्य अपाने योजयेद्बलात्॥४९॥
तावदाकुञ्चयेद्गुह्यं शनैरश्विनिमुद्रया।
यावद्गच्छेत्सुषुम्नायां वायुः प्रकाशयेद्धठात्॥५०॥

राखसों अंगको लपेट (लेपन) करै और सिद्धासन बांधकर बैठ और नाकके दोनों छेदनसों प्राणवायु (हृदयस्थ पवन) को खैंचके बलके सहित अपानवायुके संग मिलाय दे जबतक वायु सुषुम्नानाडीके भीतर जायके प्रकाशित न हो तबतक अश्विनीमुद्राके द्वारा धीरे धीरे गुह्यप्रदेश (गुदा) को सकोडै॥ ४९॥ ५०॥

तदा वायुप्रबंधेन कुंभिका च भुजंगिनी।
बद्धश्वासस्ततो भूत्वा ऊर्ध्वमार्गं प्रपद्यते॥ ५१॥

याही भांति निश्वास रोकके कुंभक प्राणायाम धारण करै तौ भुजंगिनी भुजंगाकार कुंडलिनीशक्ति जागके ऊपरकी ओर उठती है अर्थात् हजार दल कमल परमात्मामें मिल जाती है ॥ ५१ ॥

विना शक्ति चालनेन योनिमुद्रा न सिद्ध्यति ।
आदौ चालनमस्यास्तु योनिमुद्रां समभ्यसेत् ॥ ५२ ॥

विना शक्तिचालनी मुद्राके अभ्यास किये योनिमुद्रा कभी सिद्धि नहीं हो सके है यासों पहिले या शक्तिचालनी मुद्राको अभ्यास कर ले तब योनिमुद्राको अभ्यास करै ॥ ५२ ॥

इति ते कथितं चण्डकापाले शक्तिचालनम् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन दिने दिने समभ्यसेत् ॥ ५३ ॥

घेरंड महाराज कहते हैं कि, हे चंडकापालि ! तुम्हारे आगे यह मैंने मुद्रा कही जाको नाम शक्तिचालनी है यह मुद्रा यत्नसों दिन दिन अभ्यास करनो चाहिये और वह अभ्यास करनो गुप्त भावसों रहै सहसा प्रसिद्ध जाहिर न होयवे पावे ५३

शक्तिचालनीमुद्राफलम् ।

मुद्रेयं परमा गोप्या जरामरणनाशिनी ।
तस्मादभ्यासनं कुर्याद्योगिभिः सिद्धिकांक्षिभिः ॥ ५४ ॥

यह मुद्रा परम गुप्त है याके द्वारा बुढापो और मृत्यु दोनों नष्ट हो जाय हैं याहीसों सिद्धिके चाहवेवारे योगियोंको इसका अभ्यास जरूर करनों चाहिये ॥ ५४ ॥

नित्यं योऽभ्यसते योगी सिद्धिस्तस्य करे स्थिता ।
तस्य विग्रहसिद्धिःस्याद्रोगाणां संक्षयो भवेत् ॥ ५५ ॥

जो योगी या मुद्राको प्रतिदिन अभ्यास करै है वाके हाथमें सिद्धि आय जाय है और उसको विग्रहासिद्धि होय है (विग्रहसिद्धि वाकों कहैं हैं जामें विशेष ग्रहणकी शक्ति हो जाय है) अर्थात् कोई काम करै झटपट पूरो हो जाय है और वाके रोग दूर हो जाय हैं ॥ ५५ ॥

उदरं पश्चिमोत्तानं कृत्वा च तडागाकृति।
ताडागी सा परा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥५६॥

पश्चिमोत्तान अर्थात् उत्तान होकर पडे और पेटको तडाग (तालाव) की तरह गहरों करै और कुंभक प्राणायाम करै इसको ताडागी मुद्रा कहैं हैं यह मुद्रा एक प्रधान गिनी जाय है याके द्वारा बुढापो और मौत जीती जाय है ॥ ५६ ॥

मांडूकीमुद्राविधिः।

मुखं संमुद्रितं कृत्वा जिह्वामूलं प्रचालयेत्।
शनैर्ग्रसेदमृतं तां मांडूकीमुद्रिकां विदुः ॥ ५७ ॥

मुखको मूंदके जीभकी जडको तालुवेके ऊपरकी ओर चलावे और धीरे धीरे हजारदल कमल निर्गत अमृत पान करै इसको मांडूकीमुद्रा कहते हैं ॥ ५७ ॥

मांडूकीमुद्राफलम्।

वलितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम्।
न केशे जायते पाको यः कुर्यान्नित्यमांडुकीम् ॥ ५८ ॥

मांडुकी मुद्राका नित्य अभ्यास जो कोई करै उसके अंगमें वलित (खालको सुकड जानों), पलित (बारनको सुपद हो जानों) तथा मांस गलकर हाड मात्रको रहनों ये

नहीं होंय और सदा यौवन (जवानही) बन्यो रहै (अर्थात्) मौत नहीं आवे और बाल पके नहीं (अर्थात् सुपेद नहीं होवे) ॥ ५८ ॥

(15)

शांभवीमुद्राविधिः ।

नेत्राञ्जनं समालोक्य आत्मारामं निरीक्षयेत् ।
सा भवेच्छांभवी मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥ ५९ ॥

दोनों भौंहनिके बीचमें वा दोनों भौंहोंकोही स्थिर दृष्टिसों अवलोकन करके और मनको एक रस करके वही आत्माराम (परमात्मा) को देखै (मानों सच्चिदानंद वहीं बैठ्यो है) याहीको शांभवी मुद्रा कहै हैं यह सब तंत्रोंसे गुप्त मानी गई है ॥ ५९ ॥

शांभवीमुद्राफलम् ।

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
इयं तु शांभवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ॥ ६० ॥

चारों वेद छहों शास्त्र (न्यायादि यथा धर्मशास्त्र) अठारह पुराण ये सब जैसे गणिका (रंडी) लोगप्रसिद्ध रहती हैं किसीके गुप्त नहीं रहती तैसेही सामान्य वस्तु है परंतु शांभवी मुद्रा जैसे कुलवधू (अच्छे घरकी स्त्री) बडी यत्नसों रहैं और सहसा काउकी आंखनिके आगे नहीं आवे वैसेही यह मुद्रा जाननी ॥ ६० ॥

स एव आदिनाथश्च स च नारायणः स्वयम् ।
स च ब्रह्मा सृष्टिकारी यो मुद्रां वेत्ति शांभवीम् ॥ ६१ ॥

जो मनुष्य या शांभवी मुद्राको जाने है वह आदिनाथ (सबको प्रथम स्वामी) है वही स्वयं नारायण (जीवसमूहकी जीवनशक्ति तथा रवि) है और वही जगत्को पैदा करवैवारो ब्रह्माभी समझनों ॥ ६१ ॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमुक्तं महेश्वरः।
शांभवीं यो विजानीयात् स च ब्रह्मा न चान्यथा॥६२॥

जो मनुष्य या शांभवी मुद्राको जानता है वही मूर्तिमान् ब्रह्म है (परमेश्वर) है या बातको महादेवजी तीन वार (त्रिवाचा) करके सत्य कहते हैं यामें झूंठ नहीं है ॥ ६२॥

16

पंचधारणमुद्राः।

कथिता शांभवी मुद्रा शृणुष्व पञ्चधारणम्।
धारणानि समासाद्य किं न सिद्धचाति भूतले ॥ ६३ ॥

घेरंड महाराज कहते हैं कि शांभवीमुद्रा तो कह आये अब हे चंडकापाली! तुम पंचधारणा मुद्रा सुनों यह पञ्चधारणामुद्राभी पांच प्रकारकी है जिन पाँचोंके प्राप्त होयवे पैं फिर भूतलमें कौन ऐसी बात है जो सिद्ध न हों अर्थात् सब सिद्ध हो जाय हैं ॥ ६३ ॥

अनेन नरदेहेन स्वर्गेषु गमनागमम्।
मनोगतिर्भवेत्तस्य खेचरत्वं न चान्यथा ॥ ६४ ॥

ये पाँच प्रकारकी धारणा मुद्रा सिद्ध होनेपर इसी नरदेहसों (विना मरे) जीतेही स्वर्गलोकमें आनो जानो हो सकै है और उस साधन करनेवालोंकी मनोगति (चाहे

जहां जाय) जाय सकै है तथा खेचरत्व (आकाशमें उड-वेकी शक्ति) प्राप्त हो जाती है पांच प्रकारकी धारणा पहिले कह आये हैं पार्थिवी १, आंभसी २; वायवी ३, आग्नेयी ४, आकाशी ५ ॥ ६४ ॥

पार्थिवीधारणामुद्राविधिः ।

यत्तत्वं हरितालदेशरचितं भौमं लकारान्वितं
वेदास्रंकमलासनेन सहितं कृत्वा हृदिस्थायिनम् ।
प्राणास्तत्र विनीय पंचघटिकां चितान्वितां धारये-
देषाशांभकरीभवेत्क्षितिजयं कुर्यादधोधारणा ॥ ६५ ॥

धरतीतत्त्वका वर्ण हरितालके समान पीला है या धर-तीतलका बीज लकार है इसका आकार चौकोन बराबर है ब्रह्मा याके देवता हैं योगके प्रभावसे उक्त सब बीजनके साहित हृदयमें ध्यानकर स्थापित करै उस समयमें प्राण वायुको खेंच करके कुंभकके द्वारा पांच घडी (दो घंटा) मन न डिगने पावे धारणा किये रहै इसी स्तंभकरी (श्वास ठहरायवेवारी) क्रि-याकों पार्थिवीधारणा कहते हैं याको दुसरो नाम (अधोधार-णाभी है) याको धारण करवेसों धरती जीती जाय है अर्थात् धरतीसंबंधी कोईभी बाधा होई तौ याके धारण करवेसों धार-कको कछुभी विघ्न नहीं होता ॥ ६५ ॥

पार्थिवीधारणामुद्राफलम् ।

पार्थिवीधारणामुद्रां यः करोति तु नित्यशः ।
मृत्युंजयः स्वयं सोऽपि स सिद्धो विचरेद्भुवि ॥६६॥

जो नर रोज या पार्थिवी धारणामुद्राको करता है वही स्वयं मृत्युंजय हो जाता है (अर्थात् कभी नहीं मरता) और वोही सिद्ध होके धरतीमें विचऱ्यो करै है ॥ ६६ ॥

आम्भसधारणामुद्राविधिः।

शङ्खेन्दुप्रतिमं च कुन्दधवलं तत्त्वं किलालं शुभं-
तत्पीयूषवकारबीजसहितं युक्तं सदा विष्णुना।
प्राणांस्तत्र विनीय पञ्चघटिकां चित्तान्वितो धारयेत्
तेषां दुःसहतापपापहारिणीस्यादांभसी धारणा॥६७॥

जलतत्त्वका वर्ण शंख तथा चन्द्रमाकी तुल्य विमल और कुंदपुष्पकी तरह उज्ज्वल है और शोभन है और याकी अमृत संज्ञा है और वकार याको बीज है और विष्णु याके देवता हैं योगके प्रभावसों हृदयके बीच उक्त जल तत्त्वके समुदायका ध्यान करै और उसी समय प्राणपवनकों खेंचके पांच घडी चित्त स्थिर करके कुम्भक प्राणायाममें स्थिर रहै याहीकों आंभसीधारणामुद्रा कहते हैं यह मुद्रा बडे २ दुःसह ताप (त्रय) तथा पापनिकों नाश करै है ॥ ६७ ॥

अथांभसीमुद्राफलम्।

आम्भसीं परमां मुद्रां यो जानाति स योगवित्।
जले च घोरे गंभीरे मरणं तस्य नो भवेत् ॥ ६८ ॥

जो साधक या आंभसीमुद्राको जानता है वही योगवित (योगको साधवेवारो) है वह यदि महाभयानक और गंभीर (गहरे) जलमेंभी पडकरभी मौतको प्राप्त नहीं होइ है अर्थात् श्वाससाधनसों जलमें डूबभी नहीं सके है ॥ ६८ ॥

इयं तु परमा मुद्रा गोपनीया प्रयत्नतः ।
प्रकाशात्सिद्धिहानिःस्यात्सत्यं वच्मि च तत्वतः॥६९॥

यह मुद्रा बडी गुप्त है और यत्नसहित याकों जाहिर न करनी याके जाहिर होवेसों सिद्धि (काम) की हानि होइ है यह मैं विचारकें सांच कहों हौं ॥ ६९ ॥

आग्नेयीमुद्राविधिः ।

यन्नाभिस्थितमिंद्रगोपसदृशं बीजं त्रिकोणान्वितं-
तत्त्वं तेजमयं प्रदीप्तमरुणं रुद्रेण यत्सिद्धिदम् ।
प्राणांस्तत्र विनीय पञ्चघटिकां चित्तान्वितं धारयत्-
देषा कालगभीरभीतिहारिणी वैश्वानरी धारणा॥७०॥

अग्नितत्त्वकौ स्थान नाभिस्थल है याकौ रंग इंद्रगोप (बीर बहुटी) की तरह लाल है रकार याकौ बीज है याकौ आकार त्रिकोण और रुद्र याके देवता हैं यह तत्त्व तेजका समूह है यह दीप्तमान (प्रकाशमान) और सिद्धिदायक है योगबलसों या अग्नितत्त्वको उदय करायकें एकाग्रचित्त हो पांच घडीतक कुंभकप्राणायामसे प्राणवायु (हृदयमें रहवेवारी पवन) को धारण करै इसका नाम आग्नेयी धारणा मुद्रा है याके अभ्याससों संसारका भय (डर) दूर हो जाय है और अग्निके द्वारा साधककी मृत्यु (मौत) कभी नहीं हो सकेगी ॥ ७० ॥

आग्नेयधारणामुद्राफलम् ।

प्रदीप्ते ज्वलिते वह्नौ पतितो यदि साधकः ।
एतन्मुद्राप्रसादेन स जीवति न मृत्युभाक् ॥ ७१ ॥

यदि साधक बहुत जरती भई धकधकाती आगमें गिर पडै तौभी या आग्नेयीधारणामुद्राके प्रसादसे जीतो रहेगो कभी मृत्युका भागी नहीं होगा ॥ ७१ ॥

वायवीधारणामुद्राविधिः ।

यद्भिन्नाञ्जनपुञ्जसन्निभमिदं धूम्रावभासं परं
तत्त्वं सत्त्वमयं यकारसहितं यत्रेश्वरो देवता ।
प्राणांस्तत्र विनीय पञ्चघटिकां चित्तान्वितां धारये-
देषा खे गमनं करोति यमिनां स्याद्वायवी धारणा७२

वायुतत्त्वको रंग घिस्यो भयो अंजन (सुर्मा) तथा धुएकी तरह है यकार याको बीज है और ईश्वर याको देवता है यह तत्त्व सत्वगुणमय है योगके प्रभावसों या वायु (पवन) तत्त्वकों उदित करायकें एकाग्रचित्त हो प्राणवायुकों खेंचकर कुम्भकप्राणायामके द्वारा पांच घडीतक धारण करै इसका नाम वायवी मुद्रा है यह मुद्रा साधन करवेवारेको वायुसे कभी मृत्यु नहीं हो सकती और साधकको सामर्थ्य आकाशमें जाने आनेकी हो जाती है ॥ ७२ ॥

वायवीधारणामुद्राफलम् ।

इयं तु परमा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ।
वायुना म्रियते नापि खे च गतिप्रदायिनी ॥ ७३ ॥

यह मुद्रा परम श्रेष्ठ है बुढापे और मौत इन दोनोंकों नाश करती है और साधक वायुके किसी प्रकारके कोपसों नहीं मर सकता और यह मुद्रा आकाशगमनकी सामर्थ्यकों देवेवारी है ॥ ७३ ॥

शठाय भक्तिहीनाय न देया यस्य कस्यचित् ।
दत्ते च सिद्धिहानिः स्यात्सत्यं वच्मि च चण्ड ते ॥ ७४

घेरण्डमहाराज बोले कि हे चंडकापालि ! या मुद्राकी विधि मूर्ख तथा जाके हृदयमें भक्ति न हो ऐसेनकों कभी नहीं बतानी चाहिये और हर काऊकों नहीं देना और शठादिकनको देनेसो बतायवेवारेकों सिद्धि नहीं होइ यह तुमसे मैंने सांच कहा है ॥ ७४ ॥

आकाशीधारणामुद्राविधिः ।

यत्सिधौ वरशुद्धवारिसदृशं व्योमं परं भासितं
तत्त्वं देवसदाशिवेन सहितं बीजं हकारान्वितम् ।
प्राणांस्तत्र विनीय पंचघटिकां चित्तान्वितं धारये-
देषा मोक्षकपाटभेदनकरी कुर्यान्नभोधारणा ॥ ७५ ॥

आकाशतत्त्वका रंग समुद्रके विशुद्ध जलकी तरह प्रकाशित होता है सदाशिव याके देवता है हकार याकौ बीज है इसी आकाशतत्त्वकों सदाशिवके सहित योगप्रभावसे उदित एकाग्रमन होकर ध्यान करै और वाही समय प्राणवायुको खैंचकर कुंभकप्राणायामसे पांच घडी धारण किये रहै इसीको आकाशीधारणा कहते हैं यह मुद्रा मोक्ष (मुक्ति) के किवारनकों खोल देय है ॥ ७५ ॥

अकाशीधारणामुद्राफलम् ।

आकाशीधारणां मुद्रां यो वेत्ति सैव योगवित् ।
न मृत्युर्जायते तस्य प्रलये नावसीदति ॥ ७६ ॥

जो मनुष्य आकाशीमुद्राको जानता है वही निश्चय योगको जानवेवारौ है उसकी मृत्युभी किसीसे नहीं होती है और प्रलय होनेपरभी ज्योंका त्यौं बन्यो रहै है ॥ ७६ ॥

इति पंचधारणामुद्राः ।

(17)

अश्विनीमुद्राविधिः ।

आकुंचयेद्गुदद्वारं प्रकाशयेत्पुनः पुनः ।
सा भवेदश्विनीमुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥ ७७ ॥

साधक फिर फिर अपने गुदाके मुखकों सकोडे और फैलावै याहीको नाम अश्विनीमुद्रा है यह मुद्रा शक्ति (ताकत) को बढायवेवारौ है ॥ ७७ ॥

अश्विनीमुद्राफलम् ।

अश्विनी परमा मुद्रा गुह्यरोगविनाशिनी ।
बलपुष्टिकरी चैव अकालमरणं हरेत् ॥ ७८ ॥

यह श्रेष्ठ मुद्रा अश्विनी गुदा (गांड) के सबरे रोगनको नाश करै है और बल और पुष्टिताकों बढावे है और अकाल मरण (बेसमय मरवेकों) हर लेती है ॥ ७८ ॥

(18)

पाशिनीमुद्राविधिः ।

कण्ठे पृष्ठे क्षिपेत्पादौ पाशवं दृढबंधने ।
सा एव पाशिनी मुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥ ७९ ॥

दोनों पाँव कंठकी पीठमें डालकर जैसे पाश (रस्सा) सों बाँध्यो जाय है वैसेही दृढ (ताकतसो) बाँधै यही पाशनी मुद्रा कही जाय है यहभी शक्ति (बल) को जगावै ॥ ७९ ॥

पाशिनीमुद्राफलम् ।

पाशिनी महती मुद्रा बलपुष्टिविधायिनी ।
साधनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिकांक्षिभिः॥८०॥

यह पाशिनी एक बडी भारी मुद्रा है यह बल और पुष्टि (अंग बढाना) तथा सिद्धि चाहवेवारे साधक लोग इसको जरूर बडे यत्नसों साधन करै ॥ ८० ॥

काकीमुद्राविधिः ।

काकचंचुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः ।
काकीमुद्रा भवेदेषा सर्वरोगविनाशिनी ॥ ८१ ॥

अपने मुखकों कौआका चोंचके तरह बनायके धीरे धीरे वायु पीवे इसका नाम काकीमुद्रा है यह सब तरहके रोगनकों दूर करै है ॥ ८१ ॥

काकीमुद्रा परा मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता ।
अस्याः प्रसादमात्रेण काकवन्नीरुजो भवेत् ॥ ८२ ॥

यह काकीमुद्रा बहुत उत्तम है और सब तंत्रनिमें गुप्त है इसके प्रसाद (प्रताप) सों मनुष्य काककी तरह रोगरहित हो जाय है ॥ ८२ ॥

मातंगिनीमुद्राविधिः ।

कंठमग्ने जले स्थित्वा नासाभ्यां जलमाहरेत् ।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात्पुनर्वक्त्रेण चाहरेत् ॥ ८३ ॥
नासाभ्यां रेचयेत्पश्चात् कुर्यादेवं पुनः पुनः ।
मातंगिनी परा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ ८४ ॥

कंठ (गरे) तक जलमें ठाडौ होकर पहले नाकसों जलको खैंचकें मुखसों निकार देवे ता पीछें मुखसों जल खैंचके पीछे नाकसों गेर देय नाकके दोनों छेदनसों वहाय देइ, या प्रकार वारंवार खैंचै और वेरवेर गेरै याकौ नाम मातंगिनी मुद्रा है यह मुद्रा बुढापे और मौतको नाश करै है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

मातंगिनीमुद्राफलम् ।

विरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्रमानसः ।
कुर्यान्मातंगिनीं मुद्रां मातंग इव जायते ॥ ८५ ॥

साधक कहूं निर्जन वन (जहां कोई मनुष्य न हो) वहां एकाग्र चित्त कर बैठे या मातंगिनिमुद्राकों साधै तौ हाथीकी तरह बलवान् हो जाय है ॥ ८५ ॥

यत्र यत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्तमश्नुते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधयेन्मुद्रिकां पराम् ॥ ८६ ॥

या मुद्राके साधन करवेवारे योगी जहां जहां स्थिर (बैठा रहेगा वहीं वहीं बहुत सुखका भागी होगा या कारण सब तरहसे जतन करकें या श्रेष्ठ मुद्राकौ साधन करनो चाहिये ॥ ८६

भुजंगिनीमुद्राविधिः ।

वक्त्रं किंचित्सुप्रसार्य्य चानिलं गलया पिबेत् ।
सा भवेद्भुजगी मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ ८७ ॥

मुखकों किंचित् थोरो फैलायकें गरेके द्वारा वायु पीया करै गरेमें पवनकौ धक्का जोरसे लगै । इसको भुजंगिनी मुद्रा कहते हैं यह बुढापौ तथा मौतको नाश करै है ॥ ८७ ॥

भुजंगिनीमुद्राफलम् ।

यावच्च उदरे रोगमजीर्णादि विशेषतः ।
तत्सर्वं नाशयेदाशु यत्र मुद्रा भुजंगिनी ॥ ८८ ॥

जितने उदर (पेट) में रोग हैं तथा अजीर्ण आदिकोंको विशेष करके यह भुजंगिनी मुद्रा शीघ्र दूर करै ॥ ८८ ॥

सर्वमुद्राफलम् ।

इदं तु मुद्रापटलं कथितं चंडकापाले ।
वल्लभं सर्वसिद्धानां जरामरणनाशनम् ॥ ८९ ॥

घेरंडमुनि बोले कि हे चंडकापालि ! मैंने तेरे आगे यह मुद्रानकौ पटल कह्यो यह सबरे सिद्ध जनोंको प्रिय (प्यारा) है और बुढापे तथा मौतको नाश करै है ॥ ८९ ॥

शठाय भक्तिहीनाय न देयं यस्य कस्यचित् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन दुर्लभं मरुतामपि ॥ ९० ॥

जो मूर्ख और भक्तिहीन अर्थात् जो भक्तिवान् न हो उसको ये मुद्रा कभी नहीं देनों चाहिये और जिस तिसकोभी देनी उचित नहीं है इसको यत्नसों गुप्त राखनी चाहिये ये सब मुद्रा देवतानकोभी दुर्लभ हैं ॥ ९० ॥

ऋजवे शांतचित्ताय गुरुभक्तिपराय च ।
कुलीनाय प्रदातव्यं भोगमुक्तिप्रदायकम् ॥ ९१ ॥

ये सब मुद्रा भोग (भोजनादि) मोक्ष दोनोंनको देवेवारी है यासों याकों विचार कर देनी चाहिये जैसे कि कोमल सुभाव हों शांतचित्त (चंचल मन न हो) गुरुके कह-

वेमें विश्वास राखता तौ होइ और अच्छे कुल (वंश) को होय ऐसेनको देनी चाहिये ॥ ९१ ॥

मुद्राणां पटलं ह्येतत्सर्वव्याधिविनाशनम् ।
नित्यमभ्यासशीलस्य जठराग्निविवर्द्धनम् ॥ ९२ ॥

यह मुद्रापटल सबरे रोगनको नाश करे है और जो नित्य अभ्यास करते हैं उसकी जठराग्नि (पेटकी अग्नि) बढ जाय है ॥ ९२ ॥

तस्य नो जायते मृत्युर्नास्य जरादिकं तथा ।
नाग्निजलभयं तस्य वायोरपि कुतो भयम् ॥ ९३॥

जो नर मुद्रासाधन करैं हैं उनको न तौ बुडापौ न मौत आदि न आग न पानी न पवन (वायु) कभी भय नहीं पहुँचा सकें हैं ॥ ९३ ॥

कासः श्वासः प्लीहकुष्ठं श्लेष्मरोगाश्च विंशतिः ।
मुद्राणां साधनाच्चैव विनश्यन्ति न संशयः ॥ ९४ ॥

मुद्रा साधन करवेसों कास श्वास प्लीह कोढ बीस तरहके कफरोग नाशको प्राप्त होते हैं (अर्थात् सर्व रोग जाते रहते हैं) ॥ ९४ ॥

बहुना किमिहोक्तेन सारं वच्मि च चण्ड ते ।
नास्ति मुद्रासमं किंचित् सिद्धिदं क्षितिमंडलम् ९५॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां घेरण्डचण्डकापालिसंवादे
घटस्थयोगप्रकरणे मुद्राप्रयोगो नाम
तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

घेरंडमहाराज कहते हैं कि हे चंडकापालि ! तोसों बहुत कहनेसे क्या है किंतु सार बात मैं कहता हूं कि जिस भूमंडल (धरतीके चारों तरफ) मुद्रासे परे कोईभी चीज सिद्धि देवेवारी नहीं हैं ॥ ९५ ॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां श्रीमधुपुरीयास्थदक्षगोत्रोद्भवचातुर्वेदीशर्म्म श्री ९ कल्याणचंद्रात्मजभिषग्राधाचंद्रविचिते व्रजभाषाभाष्य नाम टीकायां घटस्थयोगप्रकरणे मुद्राकथनो नाम तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

चतुर्थोपदेशः ४ ।

प्रत्याहारप्रकरणम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकमुत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशनम् ॥ १ ॥

घेरंड महाराज कहते हैं कि हे चंडकापालि ! मुद्रा कहे पीछें अब हम तोसों प्रत्याहार उत्तम योग कहत हों याके ज्ञानमात्रसेही कामादि (क्रोध मोह मद आदि) वैरी नाशकों प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अतस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत ॥ २ ॥

जिस विषयमें मन चंचल होके भ्रमण करै प्रत्याहारके द्वारा उस उस विषयसों मनको लौटाय दे अपने वश लानो चाहिये ॥ २ ॥

पुरस्कारं तिरस्कारं सुश्राव्यं भावमायकम् ।
मनस्तस्मान्नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ३ ॥

चाहे आदर हो चाहें निरादर हो किसीमें मनको कभी नहीं फसानों याही प्रकार कानको अच्छा लगता शब्द हो चाहे बुरो बोले हो किसीमें मन न लगावे अपनेही वश राखै ॥ ३ ॥

सुगंधो वापि दुर्गंधो घ्राणेषु जायते मनः ।
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ४ ॥

चाहें सुगंध (अच्छी गंध) हो चाहें दुर्गंध (बुरी गंध) हो सूंघवेमें आवै और मन वारंवार चाहें तौ मनको वहांसे लौटायकें अपने वशमें कर लेय ॥ ४ ॥

मधुराम्लकतिक्तादिरसान्याति यदा मनः ।
तस्मात् प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥५ ॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां घेरण्डचण्डकापालिसंवादे
प्रत्याहारप्रयोगो नाम चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

मीठौ खट्टौ चरपरौ रस आदि (सब रस) कसैलौ कडुऔ लवण हो यदि मन इन छहों रसोंकी ओर दौडे तौ उधरसे फेरकरके मनकों आत्मा (अपने) वशमें लावै इसका अभ्यास करै याको नाम प्रत्याहार कहे हैं ॥ ५ ॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां श्री मधुपुरीयास्थदक्षगोत्रोद्भवविद्व-
द्वराशिरोमणिश्रीगुरु १०९ श्री नारायणचंद्रचरणारविंदा-
नुरागिराधाचंदविरचितं व्रजभाषाभाष्यं नाम टीकायां
प्रत्याहारप्रयोगो नाम चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

पञ्चमोपदेशः ५ ।

प्राणायामप्रयोगः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य यद्विधिम् ।
यस्य साधनमात्रेण देवतुल्यो भवेन्नरः ॥ १ ॥

घेरंडमहाराज चंडकापालीसे कहे हैं कि प्राणायामकी विधि कहे हैं जाके साधन करवेसों नर देवतानके समान होइ जाइ है ॥ १ ॥

आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथा परम् ।
नाडीशुद्धिं च तत्पश्चात्प्राणायामं च साधयेत् ॥ २ ॥

प्राणायाम साधनके पहले स्थान निदान करनो चाहिये ता पीछें समय स्थापन करे एक अंदाजसों भोजन कर तापीछे प्राणायामको साधे ॥ २ ॥

स्थाननिदानम् ।

दूरदेशे तथारण्ये राजधान्यां जनान्तिके ।
योगारंभं न कुर्वीत कृतो न सिद्धिदो भवेत् ॥ ३ ॥

देश (गाम) नसों दूर तथा वन (शोभायमान) में राजाके राजमें जातके बहुत नरोंके पास इतनी जगह प्राणायामरूप योगको साधन करनेसों सिद्धिको नहीं देय है ॥ ३ ॥

अविश्वासं दूरदेशे अरण्ये रक्षिवर्जितम् ।
लोकारण्ये प्रकाशश्च तस्मात् त्रीणि विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

दूर देशमें भरोसो न होयवेसों और वनमें रक्षा नहीं होइ सके तासो (शहर) नगरमें जाहिर होइ है तासों इन तीननकों नहीं करना अर्थात् इनकी नाईं है ॥ ४ ॥

सुदेशे धार्मिके राज्ये सुभिक्षे निरुपद्रवे।
कृत्वा कुटीरं तत्रैकं प्राचीरैः परिवेष्टितम् ॥ ५ ॥
वापीकूपतडागं च प्राचीशादयवर्त्ति च।
नात्युच्चं नातिनिम्नं च कुटीरं कीटवर्जितम् ॥ ६ ॥
सम्यग्गोमयलिप्तं च कुटीरं तत्र निर्मितम्।
एवं स्थानेषु गुप्तेषु प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ ७ ॥

अच्छे देशमें धर्मवान् राजाके राज्यमें अच्छा अच्छी तरहके भोजन होते हों वहां और जहां कछु उपद्रव न हो तहां एक कुटी (मकान) बनावे वाके चारों ओर भींत आदिसे घेर देवे और वा भींतादिके भीतर कुआ बावडी तलाव होना चाहिये वो कुटी न तो ऊंची होइ न बहुत नीची होय और कोई जानवर वहां न होइ और गोबरसो लिपी रहे ऐसी कुटी निर्माण करे ऐसे जगह काऊकों जाहिर न हों वहां प्राणायाम साधनो चाहिये ॥ ५ ॥ ७ ॥

कालनिर्णयः।

हेमंते शिशिरे ग्रीष्मे वर्षायां च ऋतौ तथा।
योगारम्भं न कुर्वीत कृतो योगो हि रोगदः ॥ ८ ॥

हेमंतऋतु शिशिरऋतु ग्रीष्मऋतु और वर्षाऋतु इनमें जो योगको आरंभ कियो जाय तो रोग पैदा करे है अर्थात् इन ऋतुनमें योगको आरंभ न करनो ॥ ८ ॥

वसंते शरदि प्रोक्तं योगारंभं समाचरेत्।
तथा योगी भवेत्सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद्ध्रुवम् ॥ ९ ॥

वसंतऋतु और शरद्ऋतुमें योगकौ आरंभ करै इनमें जो योगारंभ करै तौ योग सिद्धि होकर सबरे रोगनसे जरूर छूटे९॥

चैत्रादिफाल्गुनान्ते च माघादिफाल्गुनान्तिके ।
द्वौ द्वौ मासौ ऋतुभोगौ अनुभावश्चतुश्चतुः ॥१०॥

चैतके महीनेसो लेकें फागुनके अंततक छः ऋतु हैं तथा माहके आदिसों फागुनके अंततक दो दो महीनानमें एक एक ऋतु होइ तथा अनुमानसों दो महीना दस दस दिनकी ऋतु होय हैं ॥ १० ॥

वसंतश्चैत्रवैशाखौ ज्येष्ठाषाढौ च ग्रीष्मकः ।
वर्षा श्रावणभाद्राभ्यां शरदाश्विनकार्तिकौ ॥ ११ ॥

चैत वैशाख तौ वसंतऋतु है, जेठ आषाढ ग्रीष्म (गरमी) की ऋतुके हैं, सैमान भादों वर्षाऋतु है क्वांर कार्तिक शरद् ऋतुके हैं, यहां हेमंत शिशिर नहीं कही ॥ ११ ॥

अनुभावं प्रवक्ष्यामि ऋतूनां च यथोदितम् ।
माघादिमाधवान्तेषु वसंतानुभवश्चतुः ॥ १२ ॥
चैत्रादि चाषाढांतं च निदाघानुभवश्चतुः ।
आषाढादि चाश्विनांतं प्रावृषानुभवश्चतुः ॥ १३ ॥
भाद्रादिमार्गशीर्षान्तं शरदोनुभवश्चतुः ।
कार्तिकादिमाघमासान्तं हेमंतानुभवश्चतुः ।
मार्गादिचतुरोमासान् शिशिरानुभवं विदुः ॥ १४ ॥

माहसों वैशाखतक चार महीना वसंतऋतु अनुभव होय है फिर चैतसों आषाढके अंततक ग्रीष्मऋतु अनुभव होइ है

और आषाढसों क्वारके अंततक प्रावृष (वर्षा) अनुभव होती है, भादोंसे अगहनके अंततक शरदू अनुभव होइ है और कार्तिकसों माहके अंततक हेमंतऋतु अनुभव होइ है और अगहनसे चार महीना शिशिरऋतु अनुभव होइ है सो ये अनुभव ऋतुनकौ यथायोग कहत भयो ॥ १२ ॥ १४

वसंते वापि शरदि योगारंभं समाचरेत् ।
तदा योगो भवेत्सिद्धो विनायासेन कथ्यते ॥ १५ ॥

वसंत अथवा शरदूमें योग आरंभ करे तौ विना परिश्रम योग सिद्ध हो जायगौ ये योगिनने कह्यो है ॥ १५ ॥

मिताहारः ।

मिताहारं विना यस्तु योगारंभं तु कारयेत् ।
नानारोगो भवेत्तस्य किंचिद्योगो न सिद्ध्यति ॥ १६ ॥

जो नर अंदाज न बाँधकर भोजन करै है और योगकौ आरंभ करै है वो बहुत रोगनसों व्याप्त होय है और वाको नेकहू योग (विद्या) सिद्ध नहीं होइ है ॥ १६ ॥

शाल्यन्नं यवपिंडं वा गोधूमपिंडकं तथा ।
मुद्गं माषचणकादि शुभ्रं च तुषवर्जितम् ॥ १७ ॥

जो कोउ योग कियो चाहें तौ वो शालि (चावल) जौकी रोटी गेहूंकी रोटी मूँग उर्द वा चनाकी दार जो खूब झक तुष (भूसी) रहित भोजन करै ॥ १७ ॥

पटोलं पनसं मानं कंकोलं च शुकाशकम् ।
द्राढिकां कर्कटीरम्भोदुम्बरींकंटकंटकम् ॥ १८ ॥

परवल कटहर कंकोल करेल आढकी (अरुई) कांकडी केला गूलर चौराई आदिको शाक भोजनमें काम लावे॥ १८॥

आमरंभा बालरंभा रंभादंडं च मूलकम् ।
वार्ताकीमूलकं ऋद्धिं योगी भक्षणमाचरेत् ॥ १९॥

आम गहँर तथा कची गहँर केलाके गुच्छाको दंडा केलाकी जड और बैंगन मुरी ऋद्धि (औषध) इन सबके साग योगनिको खानं चाहिये ॥ १९ ॥

बालशाकं कालशाकं तथा पटोलपत्रकम् ।
पञ्चशाकं प्रशंसीयाद्वास्तुकं हिलमोचिकाम् ॥ २०॥

कोमल (कचौ) साग अपने काल (समय) भयो साग और परवलके पत्ता ये पाँच साग (योगियोंको) प्रशंसाके योग्य हैं और बथुआ तथा हिलमोचिकादि ॥ २० ॥

शुद्धं सुमधुरं स्निग्धं उदरार्द्धविवर्जितम् ।
भुज्यते सुरसं प्रीत्या मिताहारमिमं विदुः ॥ २१ ॥

स्वच्छ मीठे चीकने आधे पेट अर्थात् भरपेट नहीं ऐसे भोजनकों योगी सुंदररसयुत प्रीतिकर भोजन करै याकों मित (युक्त) आहार कहें हैं ॥ २१ ॥

अन्नेन पूरयेदर्धं तोयेन तु तृतीयकम् ।
उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायुचारणे ॥ २२ ॥

आधे पेट भोजन करे तीसरे (भाग) जल पीये और चौथो हिस्सा पेटको पवनको फिरवेकों बाकी रहनेदेवे॥ २२॥

कट्वम्ललवणं तिक्तं भृष्टं च दधि तक्रकम् ।
शाकोत्कटं तथा मद्यं तालं च पनसं तथा ॥ २३ ॥

कुलत्थं मसुरं पाण्डुं कूष्माण्डं शाकदण्डकम् ।
तुम्बीकोलकपित्थं च कण्टाबिल्वपलाशकम् ॥२४॥
कदम्बं जम्बिरं बिम्बं लकुनं लशुनं विषम् ।
कामरङ्गं प्रियालं च हिंगुशाल्मलिकेमुकम् ।
योगारम्भे वर्जयेत पथ्यं स्त्रीवाह्निसेवनम् ॥ २५ ॥

कडुओ खट्टो नोनको चरपरो भूँजे भये (चनादि) दही मठा बुरे साग शराब (नसाकी वस्तु) छुहारे कटहर और कुलथी मसूरकी दाल पांडु (पीतकाको साग) पेठो मर्शाके डाठरे घीया वैर कैथ (फल) काँटेवारो वेल पलाश (ढाक) कदंबके फूल जंभीरी लकुच लहसन विष कमरख प्याज हींग शेमर केमुक (गोभी) इनको योगके आरंभमें नहीं सेवै अर्थात् वार्जित हैं और रस्तामें चलनों, पराई नारी और आगि येभी न सेवै ॥ २३–२५ ॥

नवनीतं घृतं क्षीरं गुडशर्करादि चैक्षवम् ।
पञ्चरम्भां नारिकेलं दाडिमं मांसिवासरम् ।
द्राक्षां तु नवनीं धात्रीं रसमम्लं विवर्जितम् ॥ २६ ॥

नवनीत (माखन) घी दूध गुड शक्कर आदि गांडेकी चीप पाँच तरहके केला अनार सोफ और मुनक्का नोनियां आँवरे और खट्टे रस वार्जित हैं ॥ २६ ॥

एला जातिलवङ्गं च पौरुषं जम्बु जाम्बुलम् ।
हरीतकीं च खर्जूरं योगी भक्षणमाचरेत् ॥ २७ ॥

इलाइची चमेली वा (जावित्री) लौंग वल करवेवारी

दवा जामुन और कठजामुन हरडे छुहारे ये वस्तु योगीको भोजनमें लेनी चाहिये ॥ २७ ॥

लघुपाकप्रियं स्निग्धं यथा धातुप्रपोषणम् ।
मनोभिलषितं योज्यं योगी भोजनमाचरत् ॥२८॥

जल्दी पकवेवारी तथा मनको प्रिय चिकनी और धातुनको पालवेवारी जो मनसे अच्छे लगे उनको योगी भोजनमें लेवे ॥ २८ ॥

काठिन्यं दुरितं पूतिसुष्णं पर्युषितं तथा ।
अतिशीतं चातिचोग्रं भक्ष्यं योगी विवर्जयेत्॥२९॥

कठिन चीज बुरी पाप पैदा करवेवारी चीज सड्यो बास्यौ तथा बहुत ठंडो बहुत गरम ऐसे भोजन योगीको नहीं सेवन करवे चाहिये ॥ २९ ॥

प्रातः स्नानोपवासादिकायक्लेशविधिं विना ।
एकाहारं निराहारं यामान्ते च न कारयेत् ॥ ३० ॥

सबेरेको न्हान्हो उपवास (भूखो रहनो) अंगको दुःख देवेवारे काम और विधिरहित और एक समयही खानो तथा नहीं खानो एक पहर पीछें भोजन ये न करने ॥ ३० ॥

एवं विधिविधानेन प्राणायामं समाचरेत् ।
आरम्भे प्रथमं कुर्यात् क्षीराज्यं नित्यभोजनम् ।
मध्याह्ने चैव सायाह्ने भोजनद्वयमाचरेत ॥ ३१ ॥

यही विधि विधानसों प्राणायाम करनो चाहिये पहले प्राणायाम करे तब दूध घी नित्य भोजनमें पीनो चाहिये और दुपहर तथा संध्याके समय इन दोही समयमें योगी भोजन करै ३१॥

नाडीशुद्धिः।

कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने च कम्बले।
स्थूलासने समासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
नाडीशुद्धिं समासाद्य प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ ३२ ॥

प्राणायाम साधनसों पहले नाडी शुद्ध करले फिर प्राणायाम साधै पूर्व कुशासनमें वा मृगछालामें वा बाघम्बरमें वा कंबलमें बैठे छोटो होय चाहे मोटौ पूर्वकी ओर मुख कर वा उत्तरकी ओर मुख करके बैठे ॥ ३२ ॥

नाडीशुद्धिं कथं कुर्यान्नाडीशुद्धिस्तु कीदृशी।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्व दयानिधे ॥ ३३ ॥

हे दयानिधे! नाडीशुद्धि कौन भाँति करनी चाहिये और नाडी शुद्धिके कहा लक्षण हैं ता सबके सुनवेकी मेरी इच्छा है सो आप ताको कहौ ॥ ३३ ॥

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव गच्छति।
प्राणायामः कथं सिद्धिस्तत्त्वज्ञानं कथं भवेत्।
तस्मादादौ नाडीशुद्धिं प्राणायामं ततोऽभ्यसेत् ॥ ३४ ॥

मलाकी तरह गुही भई नाडीनके भीतर पवन घुसके गमन नहीं कर सकै है तासों प्राणायाम कैसे सिद्धि होवै और तत्त्वज्ञानहू नहीं होयसकै है तासों पहले नाडीशुद्धि कर फिर प्राणायामको अभ्यास (साधन) करै ॥ ३४ ॥

नाडीशुद्धिर्द्विधा प्रोक्ता समनुर्निर्मनुस्तथा।
बीजेन समनुं कुर्यान्निर्मनुं धौतिकर्मणा ॥ ३५ ॥

नाडीशुद्धि दो तरहसों होय है एक तौ समनु दूसरे निर्मनु कह्यौ है समनु तौ वह जो बीजमंत्रसों कीयौ जाय और धौतिकर्म (पहले कह आये) तासों करे वे सो निर्मनु नाडी शुद्धि कहे हैं ॥ ३५ ॥

धौतिकर्म पुरा प्रोक्तं षट्कर्मसाधने यथा ।
शृणुष्व समनुं चंड नाडीशुद्धिं यथा भवेत् ॥ ३६ ॥

हे चंडकापालि ! पहले छः कर्मके साधनमेंही धौतिकर्म कह आये और नाडीशुद्धि जैसे होई सो तू सुन ॥ ३६ ॥

उपविश्यासने योगी पद्मासनं समाचरेत् ।
गुर्वादिन्यासनं कुर्याद्यथैव गुरुभाषितम् ।
नाडीशुद्धिं प्रकुर्वीत प्राणायामविशुद्धये ॥ ३७ ॥

योगी पद्मासन लगायकरकें बैठे और गुरुआदिक न्यास करे तथा गुरुजीनें सिखायो, कह्यौ तैसें करे तौ नाडी शुद्धि होई है प्राणायाम शुद्धिके लिये ॥ ३७ ॥

वायुबीजं ततो ध्यात्वा धूम्रवर्णं सतेजसम् ।
चंद्रेण पूरयेद्वायुं बीजं षोडशकैः सुधीः ॥ ३८ ॥
चतुःषष्ट्या मात्रया च कुम्भकेनैव धारयेत ।
द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं सूर्यनाड्या च रेचयेत् ॥ ३९ ॥

तब ध्यान करे वायुबीज (यं) कौ कैसौ है वायुबीजको वर्ण तौ ताको धूम्र (धूआँ) के समान तेजसहित ये जो मंत्र है ताकौ वाँए नाकके छेदसो सोलह वार जपतौ (वायुको खैंचे) और चौसठ वार जपतौ दोनों नाकके छेद बंद कर

वायु (पवन) को ठहरावे ऐसेही बत्तीस वार जपतौ नाकके दायें छेदसों वायु (पवन) को निकार दे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

नाभिमूलाद्वह्निमुत्थाप्य ध्यायेत्तेजोवनीयुतम् ।
वह्निबीजषोडशेन सूर्यनाड्या च पूरयेत् ॥ ४० ॥
चतुःषष्ट्या च मात्रया कुंभकेनैव धारयेत् ।
द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं शशिनाड्या च रेचयेत् ॥ ४१ ॥

टूंडीकी जड अग्नितत्त्वकी जगह है सो वाको ध्यान कर दीप्त करैं धरतीतत्त्वकों वामें मिलावे फिर अग्निबीज जो (रं) ताकों सोलै वार जप करतौ भयौ नाकके दाँये छेदसौं पवनको खेंचे ऐसेही चौसठ वार (रं) जपतो भयौ दोनों सुर नाकके छेद मूंद जपतौ भयो डाटे और बत्तीसवार वायुमंत्रके बीजकौं जपतौ भयो नाकके बायें छेदसों निकास देय ॥ ४० ॥ ४१ ॥

नासाग्रे शशिधृग्बिम्बं ध्यात्वा ज्योत्स्नासमन्वितम् ।
ठं बीजं षोडशेनैव इडया पूरयेन्मरुत् ॥ ४२ ॥
चतुःषष्ट्या मात्रया च वं बीजं नैव धारयेत् ।
अमृतं प्लावितं ध्यात्वा नाडीधौतिं विभावयेत् ।
लकारेण द्वात्रिंशेन दृढं भाव्यं विरेचयेत् ॥ ४३ ॥

फिर नाकके आगेके भागमें किरणनिके सहित चंद्रको ध्यान करतौ भयौ (ठं) जो बीज है ताकों सोलै वार जप करतौ भयो नाकके बायें रंध्र (छेद) सों वायु (पवन) कों हौले हौले खेंचै और चौंसठ वार (मात्रा) जपै (वं) बीज को जपतौ भयौ (दोनों छेदनिसों रोके) और ध्यान करै कि नाकके आगेके भागमें रहवेवारो चंद्रबिम्ब तासों मानों अमृत

गिरे है तासो अंगकी सबरी नाडी धुइ रही हैं ऐसें ध्यान कर (लं) बीज ताकों बत्तीस वार जपतौ भयो नाकके डाँये सुर (छेद) सो निकार देय ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

एवंविधां नाडीशुद्धिं कृत्वा नाडीं विशोधयेत् ।
दृढो भूत्वासनं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत् ॥४४॥

याही नाडीशुद्धिसें नाडीनको झक करके मजबूतीसों आसन मारके पिय प्राणायामकौ अभ्यास करनों ॥ ४४ ॥

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्टकुंभिकाः॥४५॥

आठ तरहको कुंभक प्राणायाम है सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, केवली ॥४५ ॥

सहितो द्विविधः प्रोक्तः प्राणायामं समाचरेत् ।
सगर्भो वीर्यमुच्चार्य निर्गर्भो बीजवर्जितः ॥ ४६ ॥

कुंभकप्राणायाम सहित नामक दो तरहको है एक तौ सगर्भ और दूसरौ निगर्भ जा कुंभकमें बीजमंत्र बोल करकें साधन कऱ्यौ जाय वो तो सगर्भ कह्यो जाय है और जामें बीज मंत्र न बोल्यो जाय वह निर्गर्भ कह्यो जाय है ॥ ४६ ॥

प्राणायामं सगर्भं च प्रथमं कथयामि ते ।
सुखासने चोपविश्य प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
ध्यायेद्विधिं रजोगुण्यं रक्तवर्णमवर्णकम् ॥ ४७ ॥

सगर्भ जो प्राणायाम है ताकों पहले कहों हों सुखासनपैं पूरबकी ओर मुख करके या उत्तरकी ओर मुख करके बैठ

फिर ब्रह्माकौ ऐसे ध्यान करे मानों रजोगुणसहित लाल है रंग जाकौ और (अ) वर्ण स्वर रूप जाकौ ॥ ४७ ॥

इडया पूरयेद्वायुं मात्रया षोडशैः सुधीः ।
पूरकान्ते कुंभकाद्ये कर्तव्यस्तू्ड्डियानकः ॥ ४८ ॥

नाकके बायें रंध्र (छेद) सों सोलह वेर जपतौ भयो (अं) या मंत्रको वायुकों खेंचै और वाही समय कुंभक (रोकवे) के पहलें पूरक (वायु खेंचवे) के पीछें उड्डीयान करनों चाहिये ॥ ४८ ॥

हरिं सत्त्वमयं ध्यात्वा उकारं कृष्णवर्णकम् ।
चतुःषष्ट्या च मात्रया कुंभकेनैव धारयेत् ॥ ४९ ॥

फिर सत्त्व (गुण) मय हरि (विष्णु) को ध्यान करै उकारूप कारो है रंग जाकौ चौसठ वेर जप (मनसे) करतौ भयो नाकके छेदनसों वायु ठेरावे ॥ ४९ ॥

तमोमयं शिवं ध्यात्वा मकारं शुक्लवर्णकम् ।
द्वाविंशन्मात्रया चैव रेचयेद्विधिना पुनः ॥ ५० ॥

फिर तमो (गुण) मय शिव (महादेव) तिनकौ ध्यान करनों और मकार जो सुपेद रंग ताकों बत्तीस वेर जपकें फिर विधिसों तथा (द्विज) निकारे (नाकको) दाँये छेदसों ५०

पुनः पिङ्गलयापूर्य कुंभकेनैव धारयेत् ।
इडया रेचयेत्पश्चात्तद्बीजेन क्रमेण तु ॥ ५१ ॥

पीछें नाकके दायें छेदसों वायुकों खैंचे घडावत दोनों छेदनसों रोकै और नाकके बांये छेदसों पवनकों निकार दे पहले जो बीज कह आये हैं तिनके क्रमसों ॥ ५१ ॥

अनुलोमविलोमेन वारं वारं च साधयेत् ।
पूरकांतं कुंभकांतं धृतं नासापुटद्वयम् ।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैस्तर्जनीमध्यमां विना ॥ ५२॥

फिर वेर वेर बायें छेद (नाकके) सों खेंचे और नाकके दांयें छेदसों निकारे फिर दांये छेदसों पवन खेंचै और बायें नाकके छेदसों निकारे (और दोनों छेदसों रोकै) खेंचवेके अंततक और रोकवेके अंततक दोनों नाकके छेदनकों छोटी अंगुरिया तथा छोटीके पासकी और अँगूठा और अंगूठाके पासकी अंगुरिया इन चारोंसो नाककों पकरै ॥५२

प्राणायामं च निर्गर्भं विना बीजेन जायते ।
एकादिशतपर्यंतं पूरकुंभकरेचनम् ॥ ५३ ॥

निर्गर्भ जो प्राणायाम दूसरी विधि कह आये, वो विना बीज (मंत्र) के कीयो जाय है सो पूरक कुंभक रेचक ये तीन प्राणायाम मिलके एक सौ बारह मात्रातक हैं ॥५३॥

उत्तमा विंशतिर्मात्रा मात्रा षोडश मध्यमा ।
अधमा द्वादशी मात्रा प्राणायामास्त्रिधा स्मृताः ॥५४॥

उत्तम तौ बीस मात्रावारो है और मध्यम सोलह मात्रावारो है और अधम बारह मात्रावारो ऐसें प्राणायाम तीन तरहको है ॥ ५४ ॥

अधमाज्जायते घर्मं मेरुकंपं च मध्यमात् ।
उत्तमाच्च भूमित्यागस्त्रिविधंसिद्धिलक्षणम् ॥ ५५ ॥

अधम प्राणायामसों घर्म (पसीना) होइ है और मध्यम

प्राणायामसों पीठ काँपवे लगजाय है और उत्तम प्राणायामसों देह धरतीसो अलग अर्थात् (आकाश) में पोंचजाय ऐसें तीन तरह प्राणायामकी सिद्धिके लक्षण हैं ॥ ५५ ॥

प्राणायामात् खेचरत्वं प्राणायामाद्रोगनाशनम्।
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी॥
आनंदो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्॥ ५६ ॥

प्राणायाम साधनसों आकाशमें उडवेकी (ताकत) प्राप्ति होइ है और प्राणायामसों प्राण (देह) के तथा (प्राणपवन) के रोग नाश होइ हैं और प्राणायामसों बोध (बुद्धि) रूप शक्ति (ताकत) होइ है और प्राणायामसों ज्ञान लाभ होइ है और प्राणायामसों मनको आनंद होइ है और प्राणायाम करवेवारो सुखी होइ है ॥ ५६ ॥

सूर्यभेदककुंभकविधिः।

कथितं सहितं कुंभं सूर्यभेदनकं शृणु।
पूरयेत्सूर्यनाड्या च यथाशक्ति बहिर्मरुत्॥५७॥
धारयेद्बहुयत्नेन कुंभकेन जलंधरैः।
यावत्स्वेदो नखकेशाभ्यां तावत्कुर्वन्तु कुंभकम्॥५८

पहले सहित कुंभक तौ कह आये अब सूर्यभेद (प्राणायाम) को सुन पहले नाकके दायें छेदसों (वायु) पवनकों खेंचै जितनी ताकत हो तितनी और जालंधर (मुद्राकों) जतनसों धारण करै और नाकके दोनों छेदसों पवनको रोकै रहै जबतक नख और बारसों पसीना न आवै तबतक धारण करै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

प्राणोपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैव च ।
नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनंजयः ॥ ५९॥

प्राण (हृदयमें रहवेवारो पवन) अपान, समान, उदान, व्यान ये पांच तरहके पवन अंगमें रहैं हैं और नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय ये पांच तरहके पवन अंगसों बाहर रहैं हैं॥ ५९

हृदि प्राणो वहेन्नित्यमपानो गुदमंडले ।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कंठमध्यगः ॥ ६० ॥
व्यानो व्याप्य शरीरे तु प्रधानाः पंच वायवः ।
प्राणाद्याः पंच विख्याता नागाद्याः पंच वायवः॥ ६१॥

प्राणपवन हृदयमें रहे है नित्य और अपान (वायु) गुदमंडलमें रहे है और समानपवन टूंडीके देशमें रहे है और उदान (पवन कंठके भीतर रहै हैं और व्यान (पवन) सबरे शरीरमें रहे है ये पांच वायु (पवन) प्रधान है और नाग आदि वायु पांचौ अप्रधान हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

तेषामपि च पंचानां स्थानान्यपि वदाम्यहम् ।
उद्गारे नाग आख्यातःकूर्मस्तून्मीलने स्मृतः ॥६२ ॥
कृकलः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृंभणे ।
न जहाति मृते क्वापि सर्वव्यापी धनंजयः ॥ ६३ ॥

वे पांचौ तरहके पवन जा जा जगह हैं वे हम कहें हैं नागनामको पवन डकार लैवेमें आवे है और कूर्मनामको पवन आँखकी पलक मीचवे खोलवेमें है और कृकर नामको पवन छींकमें है और हिचकीमें देवदत्तनामको पवन है सो

जंभाइमें है और धनंजयनामकी पवन मरे पीछें तक अंगमें रहे है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

नागो गृह्णाति चैतन्यं कूर्मश्चैव निमेषणम् ।
क्षुधा तृट् कृकरश्चैव चतुर्थेन तु जृम्भणम् ।
भवेद्धनञ्जयाच्छब्दं क्षणमात्रं न निःसरेत् ॥ ६४ ॥

नाग (नामकों पवन) चैतन्यता (हुसयारी) को ग्रहण करे और कूर्म (नामकौ पवन) आंखौंकी पलकोंमें रहता है और कृकर (नामकौ पवन) भूँख प्यासी और देवदत्त नामकौ (पवन) उवासीको ग्रहण करे है और धनंजय (नामकौ पवन) अंगसों एक क्षण बाहर नहीं होइ है और बोलवे (वगैरे) का काम होता है ॥ ६४ ॥

सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ।
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखंडवेगतः ॥ ६५ ॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुंभयित्वा यथाविधि ।
रेचयित्वा साधयेत्तु क्रमेण च पुनः पुनः ॥ ६६ ॥

सबरे सूर्यभेदक (प्राणायाम) टूंडीकी जडसों उठायकर पीछे धीरजके संग बडे वेगसों नाकके बाँयें छेदसों पवन निकार दे फिर नाकके दाँये छेदसों पवनको खेंचे और दोनों नाकके छेदसों रोके विधिसहित ऐसेही खेंचे और रोके बेरबेर क्रमसों ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

सूर्यभेदककुंभकफलम् ।

कुंभकः सूर्यभेदस्तु जरामृत्युविनाशकः ।

बोधयेत्कुंडलीं शक्तिं देहानलविवर्द्धनः ।
इति ते कथितं चंडं सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥ ६७ ॥

सूर्यभेदक कुंभक बुढापौ तथा मौतको नाश करै है और कुंडलीशक्तिको तेज करै है और अंगस्थ अग्निको बढावै है हे चंडकापालि ! यह सूर्यभेदक उत्तम प्राणायाम संपूर्ण भयौ ६७

उज्जायीकुंभकविधिः ।

नासाभ्यां वायुमाकृष्य वायुं वक्रेण धारयेत् ।
हृद्गलाभ्यां समाकृष्य मुखमध्ये च धारयेत् ॥ ६८ ॥

नाकसों पवनको खेंचकर मुखमें धरके रोके और हृदय और कंठके पवनको खेंचकर मुखके (वायुके) बीच (मिलायके) धारण करै ॥ ६८ ॥

मुखं प्रक्षाल्य संवंद्य कुर्याज्जालंधरं ततः ।
आशक्ति कुंभकं कृत्वा धारयेदविरोधतः ॥ ६९ ॥

तब मुख धोयके वंदनाकरके जालंधरमुद्रा तबतक करै और कुंभकप्राणायाम (वायुको रोकनों) तबतक करै जबतक बल रहे तबतक धारण करै रहै और निकार देवे ॥ ६९ ॥

उज्जायीकुंभकफलम् ।

उज्जायीकुंभकं कृत्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ।
न भवेत्कफरोगं च क्रूरवायुरजीर्णकम् ॥ ७० ॥
आमवातं क्षयं कासं ज्वरप्लीहा न विद्यते ।
जरामृत्युविनाशाय चोज्जायीं साधयेन्नरः ॥ ७१ ॥

उज्जायीकुंभक (प्राणायामकौ रोकनो) सबरे कामनको साधै है और कफके रोग नहीं होइ हैं वादीको कोप तथा

तापतिल्ली नहीं रहे है और बुढापौ तथा मौतकौ नाश करै है जो मनुष्य उज्जायीकुंभक (प्राणायाम) को साधै है ताकै ॥ ७० ॥ ७१ ॥

शीतलीकुंभकविधिः।

जिह्वया वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः।
क्षणं च कुंभकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत्पुनः ॥७२॥

जीभसों पवनको खेंचकर पेटमें हौले हौले भरले फिर क्षण (पलक) भर रोकके पीछे नाकसो निकार दे यह शीतलीकुंभक प्राणायामकी विधि है ॥ ७२ ॥

शीतलीकुंभकफलम्।

सर्वदा साधयेद्योगी शीतलीकुंभकं शुभम्।
अजीर्णकफपित्तं च न च तस्य प्रजायते ॥ ७३ ॥

सदाही साधनो चाहिये योगीजननको शुभ जो शीतलीकुंभक (प्राणायाम) सों कफ पित्त अजीर्णके रोग कभी नहीं होइ हैं ॥ ७३ ॥

भस्त्रिकाकुंभकविधिः।

भस्त्रेव लोहकाराणां यथा क्रमेण संभ्रमेत्।
तथा वायुं च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेच्छनैः॥७४॥

जैसे लुहारकी धोंकनी वेर वेर वायु (पवन) को खेंचे (छोडे) है वैसेही पवनको नाकके दोनों छेदनसों खेंचके पेटमें हौले हौले भरे ॥ ७४ ॥

एवं विंशतिवारं च कृत्वा कुर्याच्च कुंभकम्।
तदंते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तं च यथाविधि ॥ ७५ ॥

त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिकाकुंभकं सुधीः ।
न च रोगं न च क्लेशमारोग्यं च दिने दिने ॥ ७६ ॥

ऐसे बीस वेर खेंच करके कुंभक (प्राणायाम) रोकनों पवनकों ता पीछे पहले जैसी विधिसों कह आये वैसेही वायुको निकार दे ऐसे बुद्धिमान् तीन वेर याको साधै भस्त्रिका कुंभक (नामके प्राणायामको) ताके न रोग होय न क्लेश होय और नित्यप्रति आरोग्य रह्यो आवै अर्थात् मरे नहीं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

भ्रामरीकुंभकविधिः ।

अर्द्धरात्रिगते योगी जंतूनां शब्दवर्जिते ।
कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां कुर्यात्पूरककुंभकम् ॥ ७७ ॥

जब आधी रात वीत जाय तब योगी (जन) एकान्त जगह जहां जीवजंतुकोभी बोल न सुन पडतौ होय तहां बैठ दोनों हाथनसों कान मूंदकर पूरक (खेंचनों) कुंभक रोकनौ प्राणायामको करै ॥ ७७ ॥

श्रृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमंतर्गतं शुभम् ।
प्रथमं झिंझीनादं च वंशीनादं ततः परम् ॥ ७८ ॥
मेघझर्झरभ्रमरीघंटाकांस्यं ततः परम् ।
तुरीभेरीमृदंगादिनिनादानकदुंदुभिः ॥ ७९ ॥

भीतरका जो नाद (सुर, आवाज) है सुंदर उसको दांये कानसों सुने वह पहले झींगुरकोसो नाद (सुर) मालूम होइगौ फिर वंसीकौसो शब्द होइगौ फिर तासों परें बादरकी गर्जनासी होइगी फिर झाँझकीसी आवाज आवैगी फिर भौंरीकोसो घोस होइगो और वासों परे घंटा तथा काँसेके पात्रकेसो

घोष होइगौ फिर तुरईकौसो शब्द तथा भेरी मृदंग और नगाडोंकोसो घोष सुन परेगो ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

एवं नानाविधं नादं जायते नित्यमभ्यसात् ।
अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः ८०
ध्वनेरंतर्गतं ज्योतिर्ज्योतेरंतर्गतं मनः ।
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
एवं च भ्रामरी सिद्धिः समाधिसिद्धिमाप्नुयात् ॥८१॥

ऐसे नानातरहके राग (सुर) रोजके अभ्याससों सुनवेमें आवे हैं और वह शब्द अपने आपही होता है वा शब्दकी अद्भुत ध्वनि हैं और वाही ध्वनिसों ज्योति पैदा है और ज्योतिके अंतर्गत मन है और तब मन वामें मिल जाय है वही परम (श्रेष्ठ) भगवान् विष्णुको परम पद है ऐसी तरह भ्रामरी (कुंभक) सों समाधिसिद्धि हो जाय है ॥८०॥८१॥

जपादष्टगुणं ध्यानं ध्यानादष्टगुणं तपः ।
तपसोऽष्टगुणं गानं गानात्परतरं नहि ॥ ८२ ॥

जपसों आठगुनों (मन) ध्यानमें (लगे है) और ध्यानसों आठगुणो (मन) तपमें और तपसों आठगुणो (मन) गायवेमें, गायवेसों परें और कोईभी नहीं है ॥ ८२ ॥

मूर्च्छाकुंभकविधिः ।

सुखेन कुम्भकं कृत्वा मनश्च भ्रुवोरन्तरम् ।
संत्यज्य विषयान्सर्वान्मनोमूर्च्छासुखप्रदम् ।
आत्मनि मनसो योगादानन्दो जायते ध्रुवम् ॥८३॥

सुखसों कुंभक (प्राणायाम) करके और मनकों भौंहनिके बीचमें (दृष्टि) द्वारा लगाय देवे और सबरे विषयनकों छोडकें मनकों सुखके करवेवारी मूर्च्छाकी तरह कर देवे और मनके योगसों (परमात्मा) आत्मामें (लय होयकें) जरूर आनंद होय है ॥ ८३ ॥

केवलीकुंभकाविधिः ।

हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ।
षट्शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ।
अजपां नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा ॥ ८४ ॥

श्वास पवन जब भीतरसों बाहर आवै है तब (हं) यह वर्ण बोल्यो जाय है और जब श्वास भीतरको जाय है तब (सः) वर्ण बोल्यौ जाय है ये दोनों वर्ण समूह इक्कीस हजार छः सौ दिन रातमें बोले (श्वास लिये) जाय हैं । इन दोनों वर्णोंका निदान तंत्रकारने ऐसें कियो है कि (हं) शिव (आनंद) है और (सः) शक्ति है तासों याको अजपा नाम गायत्री कहें हैं और सबही जीव जपें हैं ॥ ८४ ॥

मूलाधारे यथा हंसस्तथा हि हृदिपङ्कजे ।
तथा नासापुटे द्वंद्वे त्रिविधं सङ्गमागमम् ॥ ८५ ॥

लिंग और गुदाके बीचमें हृदयकमल तथा नाकके दोनों छेदमें और इडापिंगला नाडीनमें इन तीनों जगहमें (अजपाको अपने आप) निकसनो घसनो होयो करै है ॥ ८५ ॥

षण्णवत्यङ्गुलीमानं शरीरं कर्मरूपकम् ।
देहाद्बहिर्गतो वायुः स्वभावो द्वादशाङ्गुलिः ॥८६ ॥

गायने षोडशाङ्गुल्या भोजने विंशतिस्तथा ।
चतुर्विंशांगुलिः प्रस्थो निद्रायां त्रिंशदङ्गुलिः ।
मैथुने षट्त्रिंशदुक्तं व्यायामे च ततोऽधिकम् ॥८७॥

वायु छः अंगुलिके समान शरीरके कर्मको रूप है और देहसों बाहिर निकरे पीछे पवनको स्वभाव बारह अंगुलिको होइहै और गायवेमें सोलह अंगुलि और भोजनमें बीस अंगुलि और मार्ग चलवेमें चौवीस अंगुलि और नींदमें तीस अंगुलि और रति (विषय) में छत्तीस कहे और परिश्रम सो अधिक होइ है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

स्वभावेऽस्य गते न्यूनं परमायुः प्रवर्द्धते ।
आयुःक्षयोऽधिके प्रोक्तो मारुते चान्तराद्गते ॥८८॥

स्वभाव (अपने भाव) सों जो इनकी गति (चालनो) थोरो होइ तौ परमायु (अवस्था उमर) बढै और अंतरगत पवन (श्वास) बहुत चलें तौ उमर घट जाय ऐसा योगिजन कहे हैं ॥ ८८ ॥

तस्मात्प्राणे स्थिते देहे मरणं नैव जायते ।
वायुना घटसम्बन्धे भवेत्केवलकुम्भकम् ॥ ८९ ॥

जबतक प्राणवायु (हृदयमें रहवेवारौ पवन) अंगमें रहे है तबतक मौत नहीं आवै है सो या अंगकी रक्षाके सम्बन्धमें वा प्राणपवनके संग केवल कुंभक (प्राणायाम) है ॥ ८९ ॥

यावज्जीवो जपेन्मंत्रमजपासंख्यकेवलम् ।
अद्यावधि धृतं संख्याविभ्रमं केवलीकृत ॥ ९० ॥
अत एव हि कर्तव्यः केवली कुम्भको नरैः ।

केवली चाजपासंख्या द्विगुणा च मनोन्मनी ॥९१॥

मनुष्य जबतक जीवे तबतक केवल अजपाकों संख्यावत जपतौ है जैसी पहलें संख्या कर आये तासों विभ्रम और केवली करैवे (सो सिद्धि होइ है) तासों नरोंकों केवलीही (प्राणायाम) करनों चाहिये और अजपाकों दूनी कर केवली-करे तौ मन बडौ प्रसन्न हो जाय है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

नासाभ्यां वायुमाकृष्य केवलं कुम्भकं चरेत् ।
एकादिकचतुःषष्ठं धारयेत्प्रथमे दिने ॥ ९२ ॥

नाक (के दोनों छेदन) सों पवन खेंचके एक खाली (रोकनों) कुंभक करै और पहले दिन जबतक (अजपा) चौसठ वेर पूरी न होंई तबतक धारण करतौ रहै ॥ ९२ ॥

केवलीमष्टधा कुर्याद्यामे यामे दिने दिने ।
अथवा पञ्चधा कुर्याद्यथा तत्कथयामि ते ॥ ९३ ॥

पहलें कह्यौ भयो केवलीकुंभकको रोज दिनमें आठवेर करनों अथवा आठ प्रहरमें आठ वार करनों तथा प्रतिदिन पांच वार (साधन करनों चाहिये) जैसो हम कहते हैं तैसैं॥ ९३॥

प्रातर्मध्याह्नसायाह्न मध्ये रात्रिचतुर्थके ।
त्रिसंध्यमथवा कुर्यात्स समाने दिने दिने ॥ ९४ ॥

सवेरे दुपहर संध्या और आधीरातके चौथे प्रहरमें अथवा तीनों संध्यानमें ठीक २ समयपै करै रोजको रोज (केवली प्राणायाम जो पहलें कह आये हैं सो) ॥ ९४ ॥

पञ्चवारं दिने वृद्धिर्वारैकं च दिने तथा ।
अजपापरिमाणं च यावत्सिद्धिः प्रजायते ॥ ९५ ॥

जबतक यह केवली कुंभक (प्राणायाम) सिद्धि न होइ तबतक रोज अजपाको प्रमाण एकवेर तथा पांचवार तथा (क्रमसों) बढातौ जाय ॥ २५ ॥

प्राणायामं केवलीं च तदा वदति योगवित्।
कुम्भके केवलीसिद्धौ किं न सिध्यति भूतले ॥ ९६ ॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां घेरण्डचंडकापालिसंवादे
प्राणायामप्रयोगो नाम पंचमोपदेशः ॥ ५ ॥

जब मनुष्य केवलीकुंभक साधन कर लेय है तब योगविद्याकौ जानवेवारौ हो जाय है केवली कुंभक सिद्धि होयवेसों धरतामें ऐसी कोऊ चीज नहीं है जो सिद्ध नहीं होय ॥ ९६ ॥

इति श्रीघेरंडसंहितायां श्रीमथुरास्थदक्षगोत्रोद्भवचातुर्वेदि श्री ५
कल्याणचंद्रात्मजराधाचंदशर्मविरचितायां व्रजभाषाभाष्य
नामकव्रजभाषाटीकायां प्राणायामप्रयोगो नाम
पंचमोपदेशः ॥ ५ ॥

षष्ठोपदेशः ६।

ध्यानयोगः।

स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा।
सूक्ष्मं बिंदुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता ॥ १ ॥

अब ध्यानयोगको कहते हैं—तामें ध्यान तीन तरहकौ कह्यो है। स्थूल ध्यान (बडो ध्यान), ज्योतिर्ध्यान (तेजकौ ध्यान) और सूक्ष्मध्यान (छोटौ ध्यान) उदाहरण—बडौ ध्यान तौ मूर्तिमय होइ है तथा ज्योतिर्ध्यान तेजमय होइ है

छोटौ ध्यान सबरहित ब्रह्ममय होत है तथा कुंडलीसो परे जो देवतासों होय है ॥ १ ॥

स्थूलध्यानविधिः ।

स्वकीयहृदये ध्यायत् सुधासागरमुत्तमम् ।
तन्मध्ये रत्नद्वीपं तु सुरत्नवालुकामयम् ॥ २ ॥

उपरोक्त समाधिको साधके हृदयमें ऐसो ध्यान करै मानों अमृतको समुद्र है ताकें बीचमें रत्न (हीरादि) मय नामक रत्नद्वीप है और तामें रत्नमय वालुकाकी उन्नति हो रही है २॥

चतुर्दिक्षु निंबतरुर्बहुपुष्पसमान्वितः ।
निम्बोपवनसंकूले वेष्टितं परिखा इव ॥ ३ ॥

तामें चारों ओर नीमके पेड बहुत फूलोंके सहित (शोभायमान) हो रहे हैं और वा नीमके फूलनिकी शोभा मानों किलेकी खाई है ऐसी लखै ॥ ३ ॥

मालतीमल्लिकाजातीकेशरैश्चंपकैस्तथा ।
पारिजातैः स्थलैः पद्मैर्गंधामोदितादिङ्मुखैः ॥ ४ ॥

और मालती और मल्लिका तथा चमेली केशर तथा चंपा और बकायन स्थलकमल इनकी सुगंधसों मानों दशों दिशा महक रही हैं ॥ ४ ॥

तन्मध्ये संस्मरेद्योगी कल्पवृक्षं मनोहरम् ।
चतुःशाखाचतुर्वेदं नित्यं पुष्पफलान्वितम् ॥ ५ ॥

ताके बीचमें ऐसो ध्यान (स्मरण) योगी करे कि एक कल्पवृक्ष है कैसो है (कल्पतरु) कि मनको हरवेवारो तामें है

चार शाखा (डारी) चारों वेद तामें नित्यकर्मादि है फल-फूलसहित ॥ ५ ॥

भ्रमराः कोकिलास्तत्र गुञ्जान्ति निगदन्ति च ।
ध्यायेत्तत्र स्थिरो भूत्वा महामाणिकमंडपम् ॥ ६ ॥

तिनमें भ्रमर (कर्म) कोकिला (सज्जन साधु) पढ रहेहैं और उपदेश कर रहे हैं फिर वा (पेड) कल्पतरुके (नीचे) स्थिर रहकें ऐसो ध्यान करै मानों माणिक्यको मंडप है॥ ६ ॥

तन्मध्ये तु स्मरेद्योगी पर्यंङ्कं सुमनोहरम् ।
तत्रेष्टदेवतां ध्यायेद्यद्ध्यानं गुरुभाषितम् ॥ ७ ॥

तामें ऐसौ स्मरण करै कि मानों एक पलंग (रत्नमय) मनकों हरवेवारौ तामें अपने इष्टदेवकौ ध्यान करे जो गुरुजीने बतायौ होई ॥ ७ ॥

यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् ।
तद्रूपं ध्यायते नित्यं स्थूलध्यानमिदं विदुः ॥ ८ ॥

और वा देवके वाकें रूपके समान गहनें तथा असवारी जाननी वैसोही वाके रूपकौ ध्यान करै याकों स्थूलध्यान कहें हैं ॥ ८ ॥

प्रकारांतरस्थूलध्यानविधिः ।

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकायां विचिंतयेत् ।
विलग्नसहितं पद्मं द्वादशैर्दलसंयुतम् ॥ ९ ॥

ब्रह्मरंध्रमें सहस्रार नामक एक सहस्र (हजार) दलकौ कमल है तहां योगी याही रूपसों ध्यान करे किंवा महाकम-

लकी पत्तीनके बीचमें जो कर्णिका है वाहूमें बारह पत्ताकौ कमल है ॥ ९ ॥

शुक्लवर्णं महातेजो द्वादशैर्बीजभूषितम् ।
हसक्षमलवरयूंहसखफ्रें यथाक्रमम् ॥ १० ॥

वो (बारह दल) कमलको सुपेद रंग है और तेजसों चमकै है और वाके बारह पत्तानमें क्रमसों यह बीज(मंत्र)दीखें हैं ह, स, क्ष, म, ल, व, र, यूं, ह, स, ख, फ्रें, यह बीजमंत्र है॥ १० ॥

तन्मध्ये कर्णिकायां तु अकथादि रेखात्रयम् ।
हलक्षकोणसंयुक्तं प्रणवं तत्र वर्त्तते ॥ ११ ॥

तामें जो कर्णिका है ताकें मध्यमें अ, क, थ ये तीन अक्षर तीन रेखा और ह, ल, क्ष, ये तीन अक्षरनसों मिले भये तथा बीचमें ॐकार विराजै है ॥ ११ ॥

नादबिंदुमयं पीठं ध्यायेत्तत्र मनोहरम् ।
तत्रोपरि हंसयुग्मं पादुका तत्र वर्तते ॥ १२ ॥

योगी ऐसौ ध्यान करै मानों वहां नादबिंदुमय एक मनोहर सिंहासन बिछौ है तापै एक जोडा हंसकौ बैठ्यौ है और खडामहू वर्ते हैं ॥ १२ ॥

ध्यायेत्तत्र गुरुं देवं द्विभुजं च त्रिलोचनम् ।
श्वेतांबरधरं देवं शुक्लगंधानुलेपनम् ॥ १३ ॥

और तहां ऐसे जो गुरुदेवको ऐसौ ध्यान करै मानो दो तौ तिनकी भुजा हैं और तीन हैं आंख जिनकी सुपेद धारण किये हैं कपडा जिनने सुपेदही है रंग जिनको और शुक्लगंध कियो है लेपन ॥ १३ ॥

शुक्लपुष्पमयं माल्यं रक्तशक्तिसमन्वितम्।
एवंविधं गुरुं ध्यानात् स्थूलध्यानं प्रसाध्यति॥१४॥

और फूलनकी माला पहरे हैं लाल रंगकी शक्ति (तिय) के संग राजें हैं और ऐसे गुरुकौ ध्यान करवेसों स्थूल ध्यान साधित होता है॥ १४॥

ज्योतिर्ध्यानविधिः।

कथितं स्थूलध्यानं तु तेजोध्यानं शृणुष्व मे।
यद्ध्यानेन योगसिद्धिरात्मप्रत्यक्षमेव च॥ १५॥

स्थूल ध्यान तौ कह्यौ अब तेजोध्यान सुन, जाके ध्यानसों योगकी सिद्धि आत्मपरमात्मा प्रगट(जाहिर)हो जाय है॥१५॥

मूलाधारे कुंडलिनी भुजंगाकाररूपिणी।
जीवात्मा तिष्ठति तत्र प्रदीपकलिकाकृतिः।
ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानं परात्परम्॥ १६॥

मलाधार (गुदा) और लिंगमूलके बीचकी जगहमें कुंडलिनी (शक्ति) साँपके रूप तथा आकारसी है वहांही दीयाकी जोतकी तरह जीवात्मा (परमेश्वर) विराजमान है तामें ज्योतिर्मय (तेजसहित) जो परमेश्वर है ताके तेजकौ ध्यान परात्पर है॥ १६॥

प्रकारांतरेण ज्योतिर्ध्यानविधिः।

भ्रुवोर्मध्ये मनोर्ध्वे च यत्तेजः प्रणवात्मकम्।
ध्यायेज्ज्वालावलीयुक्तं तेजोध्यानं तदेव हि॥१७॥

दोनों भौंहनके बीचमें तथा मनके ऊपर जो ॐकार मय

तेजावलीयुक्त जो शिखा है वही तेजोध्यान है अर्थात् ज्योतिर्ध्यान कह्यौ जाय है ॥ १७ ॥

सूक्ष्मध्यानविधिः ।

तेजोध्यानं श्रुतं चंड सूक्ष्मध्यानं वदाम्यहम् ।
बहुभाग्यवशाद्यस्य कुंडली जागृता भवेत् ॥ १८ ॥

हे चंडकापालि ! तेजोध्यान तौ सुन्यो अब सूक्ष्मध्यान कहों हों जाकी कुंडलिनी जाग उठै है वह बडौ भागवान् है १८

आत्मनः सह योगेन नेत्ररंध्राद्विनिर्गता ।
विहरेद्राजमार्गे च चंचलत्वान्न दृश्यते ॥ १९ ॥

तब वो आंखनिके छेदनसों निकसकें आत्मासों मिलकें राजमार्गमें विहार करवे लगै है और ऐसी चंचल हो जाय है कि काहूकों नहीं दीखै है ॥ १९ ॥

शांभवीमुद्रया योगी ध्यानयोगेन सिध्यति ।
सूक्ष्मध्यानमिदं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ २० ॥

तब योगी शांभवीमुद्राके योगसों ध्यान करै तौ सिद्धि हो जाय है यह सूक्ष्मध्यान बडोही गुप्त है और देवतानकोंभी दुर्लभ है ॥ २० ॥

स्थूलध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानं प्रचक्षते ।
तेजोध्यानाल्लक्षगुणं सूक्ष्मध्यानं परात्परम् ॥ २१ ॥

स्थूलध्यानसों सौगुनों तेजोध्यान कह्यौ जाय है और तेजोध्यानसों लाखगुनों सूक्ष्मध्यान है तथा वह ध्यान दूरसोंभी दूर हैं ॥ २१ ॥

इति ते कथितं चंड ध्यानयोगं सुदुर्लभम् ।
आत्मा साक्षाद्भवेद्यस्मात्तस्माद्ध्यानं विशिष्यते॥२२॥

इति श्रीघेरंडसंहितायां घेरंडचंडकापालिसंवादे घटस्थयोगे ध्यानयोगो नाम षष्ठोपदेशः ॥ ६ ॥

हे चंडकापालि ! मैंने तोसों यह सुदुर्लभ ध्यानयोग कह्यौ जासों आत्मा प्रकट हो जाय है याहींसों ध्यानयोग सबसो जादा है ॥ २२ ॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां श्रीमथुरादक्षगोत्रोद्भवचातुर्वेदिशर्मश्री १०९ बडे चौबेश्रीकल्याणचंद्रात्मजभिषग्राराधाचन्दविचितायां व्रजभाषाभाष्य-नामव्रजभाषाटीकायां ध्यानयोगो नाम षष्ठोपदेशः ॥ ६ ॥

सप्तमोपदेशः ७ ।

समाधियोगविधिः ।

समाधिं च परं योगं बहुभाग्येन लभ्यते ।
गुरोः कृपाप्रसादेन प्राप्यते गुरुभक्तितः ॥ १ ॥

समाधियोगसौं परें कोऊ योग है नहीं और वाकों बहुत भाग्यतासों पावै है और गुरुकी कृपा तथा भक्तिसों तथा बडे अनुग्रहसों मिलै हैं ॥ १ ॥

विद्याप्रतीतिः स्वगुरुप्रतीतिरात्मप्रतीतिर्मनसः प्रबोधः ।
दिनेदिनेयस्य भवेत्स योगी सुशोभनाभ्यासमुपैति सद्यः

जाकों विद्यामें (योगमें) विश्वास होइ और अपने गुरुकी प्रतीत राखै और आत्मापें विश्वास राखै और मनको बोधकर राखै है वोही योगी रोज सुंदर अभ्यासकों प्राप्त होइ ॥ २ ॥

घटाद्भिन्नं मनः कृत्वा ऐक्यं कृत्वा परात्मनि ।
समाधिं तद्विजानीयान्मुक्तसंज्ञो दशादिभिः॥ ३ ॥

अंगसों अलग मन करकें (सबसो अलग) जो परमात्मा है तामें एकाग्र मन लगावैं वाकों समाधि जाननी यह दश (अवस्थादि) छूट जाय अर्थात् मुक्ति हो जाय हैं ॥ ३ ॥

अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानंदरूपोऽहं नित्यमुक्तः स्वभाववान् ॥ ४ ॥

तब ऐसो विचारे कि मानों मैंही ब्रह्म हों दूसरा कोई नहीं है शोक जो होयो करें हैं उनका भागी मैं नहीं हूं तासों मैं निश्चय ब्रह्मसों तीनों कालमें एकसम रहूं तथा सांच झूठको जानों हूं चैतन्य आनंदमय सबसों अलग अपनें भावसों मुक्त हूं ॥ ४ ॥

समाधिभेदाः ।

शांभव्या चैव खेचर्य्या भ्रामर्य्या योनिमुद्रया ।
ध्यानं नादं रसानंदं लयसिद्धिश्चतुर्विधा ॥ ५ ॥
पंचधा भक्तियोगेन मनोमूर्च्छा च षड्विधा ।
षड्विधोयं राजयोगः प्रत्येकमवधारय ॥ ६ ॥

अब समाधियोगके भेद कहें हैं । ध्यानयोग समाधिमें शांभवीमुद्रा और (नादयोग समाधिमें खेचरीमुद्रा) और रसानंदयोग समाधिमें भ्रामरीमुद्रा लयसिद्धियोग समाधिमें योनिमुद्रा भक्तियोगसमाधिमें यह उपरोक्त मुद्रानसों धारण करनों याही तरह राजयोगसमाधि सबरी धारण करनो ॥ ५ ॥ ६

ध्यानयोगसमाधिः ।

शांभवीमुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत् ।
बिंदुब्रह्म सकृद्दृष्ट्वा मनस्तत्र नियोजयेत् ॥ ७ ॥

पहले शांभवीमुद्रा (धारण) करकें तब आत्माको प्रकट कर मानो फिर बिंदुमय ब्रह्मको एकदफे दर्शन कर वहीं मनकों ठहराय देवै ॥ ७ ॥

खमध्ये कुरु चात्मानं आत्ममध्ये च खं कुरु ।
आत्मानं खमयं दृष्ट्वा न किंचिदपि बाधते ॥
सदानंदमयो भूत्वा समाधिस्थो भवेन्नरः ॥ ८ ॥

फिर माथेमें रहवेवारो ब्रह्मलोकमय आकाशके बीचमें अपने जीवात्माकों बैठारै और याही तरह अपने जीवात्माके बीचमें माथौ धरै ब्रह्मलोकमय आकाशकोभी स्थापन करै पीछे अपने जीवात्माको आकाशमें देखके वह पुरुष काहू चीजमें नेकहू न बँधे और सदा आनंदमय होयके समाधिमें बैठ जाय याकों ध्यानयोगसमाधि कहे हैं ॥ ८ ॥

नादयोगसमाधिविधिः ।

साधनात्खेचरी मुद्रा रसनोर्ध्वं गता सदा ।
तदा समाधिसिद्धिःस्याद्धित्वा साधारणक्रियाम् ॥ ९ ॥

खेचरीमुद्राकों साधके जीभको ऊपरकी ओर जायवेवारी करे अर्थात् तलुआके गड्ढामें अमृतकूप जो है तामें जीभ मिलायकें तब समाधिसिद्धि हो जाय है और (सबछोड) साधारण क्रिया (याकों नादकों) साधै ॥ ९ ॥

रसानन्दसमाधिविधिः ।

अनिलं मंदवेगेन भ्रामरीकुंभकं चरेत् ।
मंदं विरेचयेद्वायुं भृंगनादं ततो भवेत् ॥ १० ॥

भ्रामरीनामक कुंभकको साध करके धीरे धीरे वायुको अतिमंदतासों निकार देवै याके साधवेसो देहके भीतर भौंराकी आवाज पैदा करै है ॥ १० ॥

अंतःस्थं भ्रामरीनादं श्रुत्वा तत्र मनो नयेत् ।
समाधिर्जायते तत्र आनंदः सोहमित्यतः ॥ ११ ॥

तब वहांहीं अपने मनको लगाय देवे जहां वा अंतर देहमें भौंरीनाद सुने तहां तो समाधि मिले है और वा समयके आनंदसों (सोहं) वही ब्रह्म मैं हों, यह ज्ञान ताकों नाद-योग समाधि कहते हैं ॥ ११ ॥

लयसिद्धिसमाधिविधिः ।

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयं शक्तिमयो भवेत् ।
सुशृंगाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि ॥ १२ ॥
आनंदमयः संभूत्वा ऐक्यं ब्रह्मणि संभवेत् ।
अहं ब्रह्मेति वाऽद्वैतं समाधिस्तेन जायते ॥ १३ ॥

पहले योनिमुद्राको साधके अपनेको शक्तिमय मानके अर्थात् अपनेको स्त्री माने पीछें मनही मनमें ऐसो माने पुरुष रूप परमात्माके संग नारीरूप आप शृङ्गाररससंबंधी विहार-कर रहे हैं वाके पीछे विहाररससों पैदा वा रसमें मग्न होके परब्रह्म सहित भावसों ओंकारमें मिल्यौ भयो हों याही योगके द्वारा मैंहू ब्रह्म हों दूसरो नहीं है ऐसे जो संचार होत है इसीको समाधिलययोग कहें हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

भक्तियोगसमाधिविधिः।

स्वकीयहृदये ध्यायेदिष्टदेवस्वरूपकम्।
चिंतयेद्भक्तियोगेन परमाह्लादपूर्वकम्॥ १४॥
आनंदाश्रुपुलकेन दशाभावः प्रजायते।
समाधिःसंभवेत्तेन संभवेच्च मनोन्मनी॥ १५॥

अपने हृदयमें इष्टदेवके रूपकौ ध्यान करै और चिंतन भक्तियोगसो तथा आनंदपूर्वक और आनंदके असुआ वहें और रोमांच खडे हो जाँय तथा बेचेत हो जाय तथा मन एकाग्र हो जाय ताको समाधियोग कहे हैं॥ १४॥ १५॥

राजयोगसमाधिविधिः।

मनोमूर्च्छां समासाद्य मन आत्मनि योजयेत्।
परमात्मनः समायोगात् समाधिं समवाप्नुयात्॥ १६

पहले मनोमूर्च्छानामक कुंभकको साधकें मनको परमात्मामें मिलाय देवे और परमात्माके संयोगसो समाधिकी प्राप्ति हो जाय है॥ १६॥

समाधियोगफलम्।

इति ते कथितं चंड समाधि मुक्तिलक्षणम्।
राजयोगः समाधिः स्यादेकात्मन्येव साधनम्।
उन्मनी सहजावस्था सर्वं चैकात्मवाचकाः॥ १७॥

इतिशब्द विषय संपूर्ण ताको बोधक है हे. चंडकापालि! मैंने तोसों समाधियोगको कह्यौ जो मुक्तकौ रूप है योग समाधि राजयोग और उन्मनी तथा सहजावस्थामें सर्वयोगनमें एकात्मा हो साधन करै॥ १७॥

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ।
ज्वालामालाकुले विष्णुःसर्वं विष्णुमयं जगत्॥ १८॥

जलरूपहू विष्णु है पृथ्वीरूपहू विष्णु है पहाडको माथौहू विष्णु है अग्निमाल (तेजपुंज) हू विष्णु है और सबरो जगत् विष्णुमय है ॥ १८ ॥

भूचराः खेचराश्चामी यावन्तो जीवजंतवः ।
वृक्षगुल्मलतावल्लीतृणाद्या वारिपर्वताः ।
सर्वं ब्रह्म विजानीयात् सर्वं पश्यति चात्मनि॥ १९॥

धरतीमें विचरवेवारे (जीव) आकाशगामी (विचरवेवारे) और सबरेही जीवजंतु हैं तथा पेड (गुल्म जातके वृक्ष) वेल लता और घास आदि और पानी और पर्वत इन सबको ब्रह्म जाननों और सबहीकों अपने जीवात्मामें देखनों चाहिये ॥ १९ ॥

आत्मा घटस्थचैतन्यमद्वैतं शाश्वतं परम् ।
घटादिभिन्नतो ज्ञात्वा वीतरागो विवासनः ॥ २०॥

या अंगमें रहवेवारौ चैतन्य अद्वितीय (अर्थात् याके समान दूसरो नहीं है) सर्वमय नित्य विराजमान नाशरहित ताकों अंगसों अलग मानवेसों बंधननसों मुक्त और वासनारहित होइ है ॥ २० ॥

एवं विधिः समाधिः स्यात् सर्वसंकल्पवर्जितः ।
[illegible]बान्धवेषु धनादिषु ।
[illegible]ा समाधिं समवाप्नुयात् ॥ २१ ॥

